

बे.फाँ कवि
ज। यशो
का
प्रेम-निष्पण
निजामुद्दीन अंसारी

Soofi Kavi Jaysi Ka Prem Niroopan

by

Nizamuddin Ansary

Rs twenty five only

प्रकाशक	पुस्तक सस्थान १०९/५०ए नेहरूनगर, कानपुर-२०८
पुस्तक	सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण
लेखक	निजामुद्दीन अंसारी
मुद्रक	आराधना प्रेस ब्रह्मनगर, कानपुर
पुस्तक बंध	अदुल गफूर एण्ड सस कानपुर
संस्करण	प्रथम १९७६
मूल्य	पचीस रुपये

प्रातस्स्मरणीय गुरुवर डॉ० रामचंद्र तिवारी

एवं

पूज्य गुरुवर श्री पण्डित वशिष्ठ त्रिपाठी

‘पथ लाइ जेहि दीन्ह गिआनू’

को

प्रणतिपूर्वक

निजामुद्दीन असारी

'मानुस पैम भएउ बगुठी । नाहि त वाह छार एक मूठी ॥'
 'जो नहि सोस पैम-पय लावा । सो प्रियमी महे फाहेन भावा ॥'
 "धुव तें ऊँच पैम धुव ऊँचा । सिर देइ पाव देइ सो छूआ ॥"
 'पैम पय जो पहुच पारा । महुँरि न मिल आइ एहि छारा ॥
 दूख भीतर जो प्रेम मघु रासा । जग नहि मरन सहै जा चाखा ॥
 'जहि के हिए पम रग जामा । ना सहि मृल-नीद विसरामा ॥'

'तीनि लोक चीन्ह सण्ड, सब पर मोहि सधि ।

प्रेम छाडि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि ॥

जायसो

आमुख

सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण' श्री निजामुद्दीन अंसारी एम० ए० (प्रवक्ता शिवली नेशनल कालेज आजमगढ़) कृत एक महत्वपूर्ण रचना है। लेखक ने छ अध्यायी मन्मथ 'सूफी सिद्धांत और प्रेम तत्त्व जायसी की प्रेम पद्धति', जायसी के प्रेम का स्वरूप 'विरह प्रेम की कसीटी', 'प्रेम का प्रभाव और महत्त्व तथा 'मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेमतत्त्व' जैसे महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन किया है। इस प्रकार प्रस्तुत कृति में जायसी द्वारा निरूपित प्रेम' का सागोपाग विश्लेषण किया गया है। कहना न होगा कि सूफी कवियों की कला चेतना प्रेम केंद्रित है। उनका मी-दय बोध प्रेम दीप्त है और उनकी जीवन दृष्टि प्रेमोदमासित है। अपनी रचनाओं के माध्यम से इन कवियों ने जीवन के उस मम का उद्घाटन किया है जो समस्त भेद प्रभेदों से ऊपर उठाकर मनुष्य को बकुंठी बना देता है। सूफी कवियों का प्रेम निरूपण काव्यशास्त्रीय मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से विवेच्य है। श्री अंसारी ने प्रस्तुत अध्ययन में यथा सम्भव इन तीनों दृष्टियों का उपयोग किया है। जायसी हिन्दी सूफी कवियों में अग्रणी हैं। उनकी रचनाओं का जितना ही गहन अनुशीलन किया जायगा उतना ही जीवन एवं आध्यात्म के निगूढ़ तत्वों का उद्घाटन होगा। मेरी धारणा है कि जायसी को प्रतिमान मानकर सत्सार के किसी भी प्रेम काव्य का मूल्यांकन हो सकता है। जायसी के प्रेम निरूपण के व्यवस्थित एवं गम्भीर अध्ययन का यह विनम्र प्रयास जायसी के पाठकों की तुष्टि का कारण बन सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

रामचन्द्र तिवारी

रीडर, हिन्दी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबन्ध मे मध्ययुगीन हिन्दी प्रामाण्यानक काव्य परम्परा के अनन्यतम कवि जायसी के प्रेम निरूपण का मागोपाग अध्ययन किया गया है। पूरा प्रबन्ध छ अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में सूफी सिद्धांत और प्रेम तत्त्व का विवेचन किया गया है। यहाँ सूफी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए इसके सिद्धांतों के विकासक्रम में प्रेम के महत्त्व का विश्लेषण किया गया है। सूफी सिद्धांतों के विकास के पूरे इतिहास को तीन युगों—प्रथम युग प्रारम्भ से लेकर ८७० ई० तक, द्वितीय युग ८७० ई० से लेकर १००० ई० तक तथा तृतीय युग १००० ई० से लेकर १५०० ई० तक में बाँटा गया है। प्रथम युग आचरण प्रधान था। द्वितीय युग में चिंतन की प्रवृत्ति विकसित हुई। तृतीय युग में विचारों का संकलन हुआ। उसकी 'याक्यायें' की गई और इस मत को पूर्ण जीवन दर्शन बनाने की चेष्टा की गई। अध्ययन में यह विशेष रूप से पाया गया कि ऐतिहासिक विकास के सभी युगों में प्रेम का महत्त्व समान रूप से मान्य रहा।

द्वितीय अध्याय में जायसी के प्रेम-व्यक्ति की सांख्यिक मीमांसा की गई है। इसके अंतर्गत जायसी के प्रेमादय, प्रेमोदय के आधार, प्रेम मार्ग की बाधाएँ, प्रेम की पूर्णता और परिपक्वता, आलम्बन का स्वरूप तथा प्रेमी की मनस्थिति का विश्लेषण मुख्यतः जायसी के प्रेम निरूपण को आधार बनाकर किया गया है।

जायसी ने प्रेम का ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया है। पद्यावत महाकाव्य में अनेक स्थलों पर उन्होंने प्रेम के आदर्श को मूर्त बनाने की चेष्टा की है। जायसी का प्रेम ही उनकी साधना का सबस्व है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि प्रेम की कसौटी पर सब जाने पर मानव कवन के सन्तुष्ट खरा हो जाता है।

प्रेमोदय का आधार निश्चित करना बड़ा कठिन है। प्रेम का आधार सौंदर्य है लेकिन यह भी द्रष्टा की व्यक्तिगत रुचि से सम्बद्ध है। सामान्यतः आलम्बन के प्रथम परिचय रूप गुण श्रवण चित्र दर्शन और सादृश्य से इस

भाव का उदय होता है। जायसी के प्रेमोदय का आधार रूप गुण भ्रवण ही है।

प्रममाग म प्रेमी साधक को अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। आध्यात्मिक प्रेम म प्रेमी (साधक) और प्रिय (साध्य परमत्त्व) का एकात्म कठिनाई से होता है। साधक का समार मे पूण विरक्त हाकर एकनिष्ठ भाव से प्रेममाग मे जाने बढना पडता है वक्तियों का परिष्कृत करना पडता है सासारिक कामनाओं पर विजय प्राप्त करना पडता है। तब कही उसे प्रिय की सत्क मिलती है। जायसी ने समासोक्ति पद्धति पर इन कठिनाइयों के उल्लेख करने के साथ आ यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना की है।

प्रेम तत्व की पणता और परिपक्वता प्रियतम के प्रति एकनिष्ठ एव अनय भाव के उदय म होनी है। प्रेम, अद्व तता की सिद्धि की आर ल जाता है। जायसी के प्रेम निरूपण म अद्व त भावापन्नता लक्षित होती है। प्रगाढ़ एव एकनिष्ठ प्रेम की मनावृत्ति इतनी प्रबल हाती है कि वह प्रेमी का सदैव एक भाव म अन रहन के लिए बाध्य करती है जिससे उसका सारा जीवन एको मुख और एकनिष्ठ हो जाता है। जायसी ने इसी स्तर पर प्रेम की पूणता का प्रतिपादन किया है।

आलम्बन का (नायिक का) स्वरूप ही प्रेम के स्यामित्व का आधार होता है। जायसी के भी काय का बीज भाव प्रेम ही है। रति का प्ररक सौ दय है। इसलिए प्रेम निरूपण करने वाले कवि आलम्बन की सौदय चेटाओं का वणन उत्साहपूर्वक करते हैं। जायसी न आलम्बन (नायिका) का शरीरगत और चेटागत गेना प्रकार का रूप चित्रण किया है। नायक भी आत्मा प्रेमी है। वह प्रियमी की पान व तिम योगी बन कर निकल पडता है। बीतरागी व समान भाग क सभी कटा की शांत भाव से सहता है। वह प्रतिगोय, लाभ, अहकार, श्रेय ईर्ष्या घणा आदि से परे है इस प्रकार वह प्रेमसी व प्रेम व आलम्बन का उचित अधिकारी है।

प्रेमादय से लेकर प्रिय व साथ पूण तादात्म्य की प्राप्ति तक प्रेमा की मन स्थिति का विश्लेषण मनाविज्ञान एव उच्चात्म-दाना के लिए चुनौती है। जायसी ने प्रेमी की मन स्थिति का क्रम उदात्त बनान की चेटा की है। वास्तव म भौतिक जगत म भी प्रेम एक ऐसा तत्व है जो प्रेमी को प्रिय की भावना म निरंतर लीन रक्ता है। प्रिय का निरंतर ध्यान करना हुआ प्रेमी उससे मिलन की अभिलाषा सजोय हुए अनक मानसिक स्थितियों को पार करके उस पूण एकात्म नाव स्थापित करता है। अपन अध्ययन प्रम म मन रहस्यवाद व अध्येताओं व निष्कषों से प्ररणा लकर प्रेमी रत्नसन की मन स्थिति का अध्ययन किया है।

तृतीय अध्याय में जायसी के प्रेम के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार किया गया है कि वह आध्यात्मिक है अथवा लौकिक ? विभिन्न विद्वानों के विचारा का विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जायसी का प्रेम आध्यात्मिक है जिसकी व्यञ्जना हम तीन रूपा में प्राप्त होती है—रूपक द्वारा, कथा प्रसंगों में अलौकिकता की ओर संकेत द्वारा तथा सूफी मत के अनुकूल प्रेम की 'व्यञ्जना' द्वारा । जायसी के प्रेम चित्रण को लौकिक मान लेने पर भी उसका महत्व कम नहीं होता । यह अपने लौकिक रूप में भी प्रेम के त्याग एवं उत्सव का भाव जगाने वाला है । यह उत्कट प्रेम प्रेमी को न जीने देता है न मरने देता है । प्रतिनायक में भी जायसी ने प्रेम की 'व्यञ्जना' की है जो आचरण के अनौचित्य को देखकर नायक के आचरण की उच्चता का बोध प्रेम की दी पता उज्ज्वलता और सात्विकता को ही प्रमाणित करता है ।

चतुर्थ अध्याय में यह दिखाया गया है कि विरह प्रेम की कसौटी है । प्रेम की सच्ची साधना विरह ही है । संयोग तो प्रेम का उपभोग पक्ष है । इस पक्ष में प्रेम का गाम्भीर्य स्थायित्व अनयता उज्ज्वलता उसके लिए किये गये त्याग और चुकाय गये मृत्यु का पता नहीं चलता । प्रेमी की निष्ठा, दडता अङ्गिता आत्म समर्पण सुख बन्धन का उत्सव, प्रेम पथ के कष्ट सहन का पता वियोग से ही चलता है । वियोग ही प्रेम का त्याग पक्ष है । साध्य के महत्व मूल्य और अलभ्यता का पता भी वियोग पीढ़ा का अनुपात से चलता है । जायसी का विरह वर्णन निश्चिन्त रूप से उनके गम्भीर प्रेम की कसौटी बन सका है ।

पंचम अध्याय में प्रेम के प्रभाव और महत्व का अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन क्रम में जायसी द्वारा प्रतिपादित प्रेम के महत्व को बड़े सूत्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है । प्रेम प्रेमी को प्रिय के व्यक्तित्व में लय कर देता है । प्रेम के समान कोई भी वस्तु सुंदर नहीं हो सकता । प्रेम के अतिरिक्त सत्कार की किसी भी वस्तु में ऐसी सुंदरता नहीं मिल सकती जो प्रत्येक स्थिति अथवा दशा में एक समान होकर बतमान रहे । प्रेम की दावा किसी भी प्रकार खोली जाय उसमें लाभ ही लाभ है । प्रेम ही इश्वर है । सृष्टि की रचना प्रेम का साधक बनाने के लिए की गई है । इन सूत्रों से जायसी के प्रेम की महत्ता प्रकट होती है ।

षष्ठ अध्याय में मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेम तत्त्व की विवेचना की गई है । इस मधुरभाव की मनुष्य का आदिवासना का परिणाम कहा जाय तो सृष्टि की प्रतीकान्मक अनुभूति का अभिव्यक्ति पर यह प्रायः प्रत्येक उपासना पद्धति में पाया जाता है । साहित्य के सभी धाराया में अनु-

शीलन करने में पता चलता है कि समान भाव, विचार, अनुभूति, स्थिति, पन्थाय आदि के लिए समान प्रतीकों और उपमानों का व्यवहार होता आया है। जायसी के प्रेम निरूपण में मधुर भाव की साधना के तत्त्व लक्षित होते हैं।

प्रस्तुत प्रबंध पूज्य गुरुवर डा० रामचंद्र तिवारी (बगिष्ठ रोडर, हिंदी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर) के निर्देशन में लिखा गया है। पूज्य गुरुवर द्वारा पद पद प्राप्त अमूल्य परामर्शों तथा पथ निर्देशन के कारण ही यह काय पूरा हो सका है। उनके स्नेहपूर्ण सन्भाव तथा विक्षणता से मुझ सतत नव प्रेरणा प्राप्त होती रही है। यदि उनकी असीम अनुकम्पा न होती तो प्रस्तुत विषय पर काय करना संभव न होता और नाव मग्नधार में ही डूब गयी होती। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए मर शब्दा में सामर्थ्य नहीं है मात्र इतना ही कह सकता हूँ कि प्रबंध में जो कुछ बन पड़ा है, वह उस ही की कृपा का प्रसाद है।

विषय की स्वीकृति प्रदान करके डा० गोपी नाथ तिवारी (भूतपूज्य अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर) ने मुझ पर विशेष कृपा की है। हम हृदय से डा० तिवारी के आभारी हैं। परम अद्वैत पूज्य गुरुवर डा० भगवती प्रसाद सिंह (आचार्य तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर) ने समय समय पर श्रवण की अपन स्नेहपूर्ण सदपरामर्शों से प्रोत्साहित किया है। वह उनके स्नेह समर्पित व्यवहार और सदपरामर्शों के प्रति कृतज्ञ है।

प्रातस्मरणीय पितृ तुल्य पूज्य गुरुवर श्री पण्डित बशिष्ठ त्रिपाठी जी (-पायाता, हिंदी संस्कृत विभाग ज० इ० का० सोहसा मठिया देवरिया) से जो संप्रेरणा एवं अहेतुकी सहायता मुझे प्राप्त हुई है उसका प्रतिदान मैं जीवन पथ में सम्भवतः न द सकूंगा। वस्तुतः प्रस्तुत काय सम्पादन की चिन्ता मुझ अधिक उद्देश्य थी। उनके उपकारों का स्मरण करके मेरा चित्त गन्तव्य एवं पुलकित हो जाता है। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरे साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार किया है। उनके अधिकार की समस्त साधन सम्पदा मेरे लिए सदैव मुक्त रही है। उनका जितना स्नेह और आशीर्वाद मुझ प्राप्त हुआ है, उतना कम लोगो को प्राप्त होता है। इस प्राप्त कर मैं स्वयं की कृतार्थ समझता हूँ।

कुशल प्रणाम, परम शिक्षाविद् श्री जीवन सुतान (आचार्य, गिबली गानक स्नातकोत्तर महाविद्यालय आजमगढ़) से श्रवण की सदैव प्रेम तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। वह उनके प्रति श्रद्धा आभारी है। २ हिन्दी विभाग, (गोरखपुर विश्वविद्यालय) के सभी गुरुजनों का आभारी हूँ। सभी की वरसलता और स्नेह मुझ बराबर खिला है।

१२ । मूखी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

प्रस्तुत प्रबंध को सुचारता से प्रकाशित करने में पुस्तक संस्थान के सर्वा स्ख आन्तरणीय श्री महेन त्रिपाठी ने जो तत्परता एवं उत्साह प्रदर्शित किया है, तदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।

प्रस्तुत प्रबंध हिन्दी विभाग के रीडर पूज्य गुरुवर डा० रामचन्द्र तिवारी के निर्देशन में लिखा गया है । प्रबंध को प्रस्तुत रूप देने में डा० तिवारी से हम बराबर सहायता मिली है । विषय की स्वीकृति प्रदान करके हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० गोपीनाथ तिवारी ने हम पर विशेष कृपा की है । हम हार्दिक स गुरुवर डा० गोपीनाथ तिवारी के आभारी हैं । यदि उनकी कृपा न होती, तो प्रस्तुत विषय पर काय करना सम्भव न होता ।

मैं हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों का विनम्र आभारी हूँ । सभी की वस्तुलता और स्नेह मुझ बराबर मिला है ।

विश्व व द स सावनय निवेदन है कि यह प्रबंध मैं प्राप्त युगताभा की ओर निर्देश करके हुए आषट्मक संगोपन, परिवर्तन एवं परिवर्धन के परामर्श स्वर उपकृत करेंगे ।

मणतत्र निवस

२६ जनवरी १९७६

निजामद्दीन अंसारी

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी विभाग

गिरी नेगनल कालज

आजमग (उ० प्र०)

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

पृष्ठ सख्या

सूफी सिद्धांत और प्रेम तत्व

१७-५२

विषय प्रवेश

सूफी गुरु की व्युत्पत्ति

सूफी सिद्धांत के विकास क्रम में प्रेम का महत्त्व

प्रथम युग (५०० ई० से ८७० ई० तक)

द्वितीय युग (८७० ई० से १००० ई० तक)

तृतीय युग (१००० ई० से १५०० ई० तक)

भारत में सूफी मत का प्रवेश और प्रेम कान्फेरी का प्रारम्भ

द्वितीय अध्याय

जायसी की प्रेम पद्धति तात्त्विक मीमांसा

५३-९९

जायसी का प्रेमोदय

प्रमादय का आधार

प्रेम भाग की बाधाएँ

प्रेम की परिपक्वता और अनन्यता

आलम्बन (नायिका) स्वरूप (१)

आलम्बन (नायक) का स्वरूप (२)

प्रेमी की मन स्थिति ।

तृतीय अध्याय

प्रेम का स्वरूप आध्यात्मिक या लौकिक

१००-१२४

आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना

लौकिक प्रेम वर्णन द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति

(१) रूपक द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की 'योजना

(२) कथा प्रसंगों में अलौकिकता की ध्याना

घटनाएँ

वर्णन

संवाद

(३) मूफ़ीमत के अनुरूप प्रेम 'योजना

लौकिक सौंदर्य वर्णन द्वारा अलौकिक मोक्ष

की 'योजना

प्रेम और विरह का व्यापक वर्णन

जायसी की आध्यात्मिक प्रेम 'योजना का मूल्यांकन

जायसी में लौकिक प्रेम की 'योजना शृंगार वर्णन

जायसी का संयोग शृंगार वर्णन

मिलन प्रसंग प्रेम भाव की रमात्मक 'योजना

अनुभावा और संचारी भावा का योजना

जायसी की प्रेम 'योजना की विवक्षिताएँ

(क) मानसिक पक्ष की प्रधानता

(ख) भारतीय और फ़ारसी प्रेम पद्धतियों का समन्वय

(ग) एकात्मिक एवं लोक सापेक्ष प्रेम पद्धतियाँ ।

चतुर्थ अध्याय

विरह, प्रेम की कसौटी

१२५-१६

वियोग वर्णन

पङ्कतु वर्णन

बारह मासा

परमात्मा के चिर विरह से दग्ध होते रहना ।

पंचम अध्याय

प्रेम का प्रभाव और महत्व

१४२-१६२

प्रेम ही ईश्वर है

सृष्टि रचना प्रेम के कारण हुई है

प्रेम सभी वस्तुओं को लावण्यमय बना देता है

प्रेम का मधु दुःख से जावेष्ठित है

प्रेम के लिए समर्पण आवश्यक है

प्रेम दूत को अटूट कर देता है
 प्रेम की जग्न को प्रज्वलित करना जीवन का लक्ष्य है
 प्रेम के अभाव में सारा साधनायें और पांडित्य व्यर्थ है

षष्ठ अध्याय

मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेमतत्त्व १६३-१७८

हिन्दी भक्ति साहित्य में मधुरोपासना
 निगूण सत्ता की भक्ति में मधुर भाव
 शृष्णकाव्य में माधुर्य भाव
 राम लीला,

मिलन और सम्भोग

भक्ता की रसलीनता

रामकाव्य में माधुर्य भाव

सीता राम माधुर्य लीला

(क) मुगल विलास

(ख) बहुरमणी विलास

(ग) एषानिक विलास

जायसी का प्रेम-तत्त्व

जायसी का प्रेम निरूपण में मधुर साधना का तत्त्व,

उपसंहार

१७९-१८०

सहायक ग्रंथ सूची

१८१-१८८

१ | सूफी सिद्धान्त और प्रेम-तत्त्व

विषय प्रवेश सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

'सूफी' शब्द का साधारण अर्थ इस्लामी सत समझा जाता है। फारसी में जिसे 'समवुफ' कहते हैं वह हिन्दी का सूफीमत है। 'समवुफ' और 'सूफी' दोनों ही प्रायः एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं और 'सूफ' शब्द से 'व्युत्पन्न' हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ के विषय में विद्वानों में मतभेद नहीं है। विविध तर्कों एवं युक्तियों के द्वारा इस शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों को सगत एवं समीचीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। प्रायः ये व्युत्पत्तियाँ सूफी साधका के जीवन की लक्ष्य में रखकर दी गयी हैं। अबुनमर अल सराज ने अपनी पुस्तक 'किनास जल नुमा' में 'सूफी' शब्द पर विचार करते हुए बतलाया है कि मूलतः सूफी शब्द अरबी के सूफ शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ ऊन है। भाषाशास्त्री 'निकोलसन' इस व्युत्पत्ति को उचित मानते हैं। इस व्युत्पत्ति से सहमति का कारण स्पष्ट करते हुए अलसराज ने कहा है कि उनका व्यवहार पगम्बर सत तथा साधक करते आये हैं। इसका समर्थन विभिन्न दृष्टीगो और विवरणों से हा जाता है। इस व्युत्पत्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि औष वस्त्रधारी, एकांत जीवनयापी साधकों के जीवन की दृष्टि में रखकर नामकरण कर लिया गया हो ता इसमें इस-मात्र भी असमति नहीं दीयती। नो एल्दके^१ ने भी इस

१ न० जेम्स हर्स्टिंग इसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, वाशिंग्टन १२, १९२१।

२ James Hastings Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol XII 1921, P 10

३ James Hastings Editor Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol XII (1921) P 10

‘व्युत्पत्ति का समर्थन करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम की प्रथम दाशताब्दियों में प्रायः लोग जीव वस्त्र का प्रयोग करते थे और सामान्य जीवन यापक इसका विनाशपूर्ण उपयोग करते थे। ब्राउन ने इसी मत का समर्थन किया है। मासूनी को मूल आधार मानते हुए उसने लिखा है कि ‘प्रारम्भिक काल से ही लोगो ने ऊनी वस्त्र धारण करने को जीवन की सहज, सादगी तथा विलासता से दूर रहने का प्रतीक मान लिया था।’¹ हुजरत मुहम्मद और उनके बाद के प्रथम चार खलीफा—अबू-बकर—अल, कलाबाधा² इन्हें खलून तथा लुइमासिओ³ न भी सूफी शब्द को सूफ से ही व्युत्पन्न बताया है और इसी व्युत्पत्ति को सर्वोत्तम माना है।

कतिपय विद्वान सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफा शब्द से मानते हैं। सूफा अर्थात् पवित्र। हुजवीरी का कथन है कि मूलतः सूफा शब्द से ही सूफी शब्द निरगत है। उनका कहना है जो लाम पवित्र था वह सूफी कहलाया। इसमें आपत्ति यह है कि सूफा शब्द से ‘सफवी बनना सूफी नहीं।

कुछ लोगो का कहना है कि पगम्बर मुहम्मद साहब के समय में मदीन की मस्जिद के सामने घास पर बैठने वाले भक्तों को अहल अल सुफाह कहते थे। इस सुफाह शब्द से ही सूफी शब्द बना है। इस व्युत्पत्ति में भी दोष है। सुफाह शब्द से सफवी बन सकता है, सफी नहीं।

कुछ विद्वानों के अनुसार सफ अल के सफ शब्द से सूफा शब्द की उत्पत्ति बैठती है। सफ अल अर्थात् प्रार्थना में निरत इमान लाने वाला की प्रथम पत्ति। लेकिन सफ से सफवी शब्द बनना, सूफी नहीं। जियामुल लुगात में सूफाह शब्द से इसका बनना माना गया है। कहा जाता है कि जाहिलिया काल में अरबों की ऐसी जाति थी जो सासारिक व्यापार से अलग होकर मक्का मक़बाला की सेवा में नियुक्त हो गयी। कुछ लोग यन्तू सूफा नामक एक मायावर जाति के सूफा शब्द से इसका व्युत्पन्न बताते हैं। सूफी फकीर भी अपने दावार शायिदों के साथ स्थान स्थान पर भ्रमण किया करते थे। इसी तरह शीक शब्द से सफिरीता से सूफी और शीयो साफिया शब्द से

1 L G Browne Literary History of Persia (1909) P 417

2 A M A Shushtery : outlines of Islamic culture Vol X (1938) P 374

3 Encyclopaedia of Islam, Vol VIII (1934) P 681

4 A M A Shushtery outlines of Islamic Culture Vol 2

तम सुफ' की पुनरुत्ति सिद्ध करने की चेष्टा भी की गयी है। सोफिया का अर्थ है ज्ञान। इस विषय में कहा जा सकता है कि सूफी साधक अनुभव सिद्ध ज्ञान महत्वपूर्ण मानते थे। अल वरूनी (जन्म काल ९३७ ई०) के समय में भी यह मान्यता थी कि 'सूफ (ऊन) शब्द से 'सूफी' शब्द बना। पर उसने यह मत प्रकट किया है कि उच्चारण में विकृति के कारण 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति सूफ से की जान गयी।^१ उनका कथन है कि इसका अर्थ वह यथक है जो 'साफी' (पवित्र) है। उसके अनुसार यह साफी ही 'सूफी' हो गया है। सूफी अर्थात् विचारको का दल।^२ ब्राउन का कहना है कि 'यह निश्चित है कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ' से हुई है। फारसी रहस्यवादी साधकों को पश्मीना पोश (ऊन धारण करने वाला) कहा गया है इससे भी इस बात की पुष्टि होती है।'^३

वस्तुतः 'सूफा' शब्द 'सूफ (ऊन) से ही व्युत्पन्न है। व्याकरण की दृष्टि से भी 'सूफी' शब्द की 'सूफ' शब्द से व्युत्पत्ति शुद्ध है।

आरवेरी, निकसन ब्राउन, भारगालिष और बली उद्दीन प्रभृति विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ से ही व्युत्पन्न है।^४

सूफीमत की साधना का केन्द्र बिंदु प्रेम है। अबुलहसन अबुलहजवेरी का कथन है कि वह शास्त्र जो मुस्लिमों के वास्ता से मुस्सफा होता है वह साफी और जो गलत दोस्त की मुहलत में गक हो गैर दोस्त से बरी हो वह सूफी होता है।^५

यदि हम उपर्युक्त सभी बातों को मिलाकर एक साथ देखें तो सूफी शब्द का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। सूफी इस्लाम के वह सर्वोच्च साधक हैं जो ऊनी चोम का व्यवहार करता है और परम प्रियतम के रूप में परमात्मा की उपासना करता है तथा इसे अपने जीवन का परम लक्ष्य मानता है।

अधिकांश मत सूफ से सूफी की व्युत्पत्ति मानते हैं जो कई कारणों से समीचीन ज्ञात होता है। उनमें वस्त्र एक विशेष प्रकार से मोटे ऊन के बने

१ अलवरूनीज इण्डिया अनु० सचाऊ पृ० ३३

२ वही।

३ E. G. Browne, A Literary History of Persia, Vol., P 417

४ E. G. Browne, Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol
XII, P 10

५ कश्फुल महजूब हुज्वरी (उद्दू अनुवाद) पृ० ४१।

रहते थे जो लोगो का ध्यान अनायास ही आकृष्ट कर लेते थे । उन से बन हुए मोटे वस्त्रा के धारण करने के कारण वे अपनी निस्पृहता, सादगी तथा स्वेच्छया दारिद्र्यमय जीवनयापन की पद्धति को अभिव्यक्ति देते थे । सासारिक वस्तुओं से उन्हें कोई मोह नहीं था । ईश्वर के अनुराग तथा अबाध मिलन की साधना में काल यापन ही उनका सर्वोच्चादश था । परमेश्वर की उपलब्धि और उनका प्रेम एकमात्र ध्येय था । इस प्रकार धन वश्व गृह परिवारादि के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करना सूफियों के लिए स्वाभाविक हो गया था । सादगी की यह वैशम्यता उनका केवल बाह्य परिधान न था । यह सन्त्यास व्रत सूफियों की आंतरिक मनोवृत्ति का भी प्रभावित करता रहा ।

अतः यह स्पष्ट है कि ऊनी वस्त्र स यासियों सावकी या परमात्मा के प्रेम में मग्न रहने वाले मर्मियों के लिए स्वीकृत हो चुका था ।

सूफी सिद्धांतों के विकास क्रम में प्रेम का महत्त्व

सूफीमत के उदभव और विकास के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में से 'मार्कस' 'निकोलसन' 'मार्गुलियस' 'मार्कवेरी' 'मार्गरेट' 'स्मिथ' तथा 'गिन्ड' आदि ने विचार किया है । उनके अध्ययन का उपयोग करते हुए हिन्दी साहित्य में पं० चन्द्रबली पाण्डेय, पं० परमुराम चतुर्वेदी, श्री रामपूजन तिवारी, डॉ० भगल कुलश्रेष्ठ, श्रीमती सरला शुक्ला, श्री विमलकुमार जैन एवं

1 E G Browne A Literary History of Persia (1909) Vol I II

2 R A Nicholson The Mystics of Islam (1914) studies in Islamic Mysticism (1921), A Literary History of Arab (1930)

3 Muhammdanism

4 Supism

5 Algazali the mystic Rabi the mystic

6 Muhammdanism—A Historical Survey

७ तसवुफ अथवा सूफीमत ।

८ सूफा शाय सग्रह ।

९ सूफीमत साधना और साहित्य ।

१० हिन्दी प्रेमसाधना काव्य ।

११ जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य ।

१२ सूफीमत और हिन्दी साहित्य ।

डा० श्याममनोहर पाण्डेय^१ ने इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

सूफीमत का इतिहास तब से प्रारम्भ होता है, जब मुहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे।^२ अतः यह कहा जा सकता है कि सूफी मत का इतिहास ६२३ ई० के लगभग प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में सूफीमत में दर्शन का प्रवेश नहीं था। इस्लाम एक प्रवृत्तिमूलक धर्म था।

इस्लाम के रहस्यवादी सूफी नाम से विख्यात है और इस्लाम का रहस्यवाद या सूफियो का दर्शन ही 'तमज्जुफ' है। इस्लाम के साधकों ने इसकी अनेक प्रकार से व्याख्याएँ की हैं। सूफी सत मारूपक अलकरसी (८०५-७२ ई०) का कथन है कि परमात्मा सम्बन्धी सत्य का ज्ञान और मानवीय विषयों का त्याग ही सूफी का सच्चा धर्म है।^३ अबुल हुसन अल नूरी (९०७ ई० विद्यमान) ने सूफी और सूफी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है। सूफी को सत्कार से घृणा होती है और ईश्वर से प्रेम है।^४ उसने अग्रिम कहा है कि 'नयस' (वामनामय हृदय) के सभी आनन्दों का परित्याग सूफी का धर्म है। इसी प्रकार जुवद (सन ९०९ ई०, विद्यमान) ने बतलाया है कि तस वुफ का तात्पर्य है अपने स्वार्थों का त्याग कर परमात्मा के लिये समर्पित हो जाना। हुज्वरी (१०९२ ई० मृत्यु) का कथन है कि सूफियों के लिये सूफी सिद्धांत मूल में भी अधिक स्पष्ट है। सच्चा सूफी वह है जो अपवित्रता को पीछे छोड़ आता है।^५ फरीदुद्दीन अत्तार (सन १२३० ई० विद्यमान) ने तजकिरा ओलिया नामक ग्रंथ में ततज्जुफ की सत्तर परिभाषाएँ दी हैं।^६ कहा जाता कि सूफीमत कोई ऐसा सुमर्गित सम्प्रदाय नहीं है कि उनके सिद्धांतों की निश्चित तालिका दी जाय या उनकी भाष्यताओं की सुनियोजित रूपरेखा प्रस्तुत की जाय। याना धर्म अथवा इस्लामी सम्प्रदायों और मता की भाँति इसकी सद्धांतिक मर्यादा का निर्धारण नहीं हुआ है। निबल्सन के अनुसार सत मारूपक अलकरसी की परिभाषा ही सूफीमत की प्राचीनतम परिभाषा है।^७

१ मध्ययुगीन प्रेमसाधन ।

२ H A R Gibb Muhammadanism P 100 101

३ लिटररी हिस्ट्री आफ दी अरब्स (१९३०) पृ० ३०५ ।

४ वही, पृ० ३८५-३९२ ।

५ 'तज्जुफ' अल महजुब अल हुज्वरी (अनु०), निबल्सन (१९११ ई०) पृ० ३५ ।

६ जनरल रायल एगियाटिक सोसाइटी (१९०४ ई०), पृ० १३० ।

७ लिटररी हिस्ट्री आफ परसिया ई० जी० वाउन, (१९०९ ई०) पृ० ४२२

८ लिटररी हिस्ट्री आफ दी अरब्स, (१९३० ई०), पृ० ३०५ ।

अबूअली मुजिबि की व ज़ुमार सूफीमत मुत्तर व्यवहार है। अबूअली साधना का मत में विधि निषेधा में बचना ही सूफी मत है। विचार अन्तर्दृष्टि ने बन लाया है कि सूफी यह है जो परमात्मा के महार अर्थात् हृदय को पवित्र रक्ता है। अबू सईद पञ्चदश्या १ १ मरी परिभाषा करने हुए जानाया है कि लक्ष्य प्राप्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाया ही सूफीमत है।^१ अबू यक़ ज़िली कहते हैं कि यह परमात्मा है अर्थात् हम समार में अपना आन बाँट जायत में परमात्मा के अतिरिक्त और किसी और ध्यान में जाना ही इसकी विधि बताता है। ज़ुलून मिया १ सूफी के लक्ष्य की बतलाते हुए लिखा है कि सूफी यह है जो ध्यान और काम में सामञ्जस्य बनाये रखता है और उसका मोन हा उस अवस्था का परिचय देता है जो जो सामाजिक व्यवस्था को दूर कर देता है। कुछ लोग का बचन है कि सूफियों का विचारता यह है कि उनका हृदय पवित्र और उनका वाक्य भी पवित्र है।

इस प्रकार आज परिभाषाएँ दमन का मिलती हैं जिनमें जाना प्रकार में सूफियों के गणों पर प्रकाश डाला गया है। जहाँ कि हुज्वरी ने कहा है कि सच्चा सूफी वही है जो आविष्यता की पीढ़ी कोट आया है।^२

इस सम्बन्ध में परिभाषाओं में इस बात पर बल दिया गया है कि साधना और आभ्यन्तर लुब्धि और पवित्रता बनाये रखना सूफी साधन का बन्धन है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी समस्त इच्छाओं सम्बन्ध वास्तनाओं को मिटाकर परमात्मा की इच्छा पर अपने को स्मृत दे। सूफीमत के पिता व्याख्याता अल बुरही ने साधना और आभ्यन्तर जीवन की पवित्रता का ही सूफा घम माना है। उसका कहना है कि पवित्रता एक अष्ट वस्तु है। चाहे जिस प्रकार की भाषा के द्वारा उस वषों में व्यक्त किया जाय और उसके विपरीत अपवित्रता है जिसका परित्याग करना चाहिए।^३ विधि विधानों से मुक्त मोड़ निराल विद्वत् में व्याप्त इस गायत तथा अमृत गति की हालत सबत्र पाकर मुस्लिम साधकों में जो रहस्य अभि यक्त किये उ हा के सामञ्जस्य का नाम सूफीमत है।

अतः सूफीमत या तसव्वुफ भी रहस्यवाद ही है अतर्निहित भावना के

१ R A Nicholson studies in Islamic mysticism (1921)

p 49

२ अल हुज्वरी दी कश्फुल महजुब अनु० निबलसन (१९११ ई०).

३ रामपूजन तिवारी सूफी मत साधना और साहित्य पृ० १६८ ६९



२६। सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

दशन बनाने की चेष्टा की गई। सूफी मत के सम्बन्ध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक विवास के सभी युगों में प्रेम का महत्व समान रूप से माया रहा।

प्रथम युग—(५००-८७० ई० तक)

प्रथम युग के सूफीमत में दशन का समावेश नहीं था। इस्लाम एक प्रवृत्तिमूलक धर्म था। पहली बार इसमें कतिपय ऐस साधक हुए जिनमें भक्ति का संश्लेषण हुआ। आत्मा का शुद्धीकरण प्रारम्भ हुआ। इन साधकों में इब्राहीम बिन अघम फुजामल बिन अयाज राबिया आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रथम युग के सूफियों में इब्राहीम बिन अघम का नाम अति महत्वपूर्ण है। इसका जन्म बल्लभ हुआ था। इसकी मृत्यु सन ७८३ ई० में हुई। इसने भी फकीरी जीवन, एकांतवास और सासारिक वस्तुओं का त्याग पर बल दिया है। परमात्मा के ऊपर अपने को सम्पूर्ण रूप से छोड़ देना ही उसका उपदेश का सार है। अतारन उसने एक प्रवचन का उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है—‘ह खुदा जानत हो कि अपना प्रेम प्रदान कर जिस प्रकार स तुमने मुझे गौरवावित किया है, उसकी तुलना में आठो स्वर्ग मसक के एक पल से अधिक मूल्य नहीं रखते।’

परमात्मा के प्रति अनन्य भक्ति और ससार के प्रति उसका विरक्ति कितनी अधिक थी, इसका ज्ञान निम्नलिखित कहानी से होता है। जब इब्राहीम राज्य परित्याग कर फकीरी जीवन व्यतीत करता हुआ इतस्त भ्रमण कर रहा था, तो कहीं उसका एक मुक्क से साक्षात्कार हो गया। वह युवक उसका पुत्र था। उसको देखकर उसने मन में मोह उत्पन्न हुआ कि तु वह सम्भल गया। कहा जाता है कि उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि हे खुदा बंद ! तुम्हारे प्रेम के लिए मैंने अपने ससार का परित्याग किया और तुम्हारे ध्यान में रत रहने के लिए मैंने अपने घर को अनाथ बनाया। यदि अब इस प्रेम को प्राप्त करने के लिए तुम्हारी शक्त हो कि मेरे टुकड़े टुकड़े कर दिय जाय तो भा मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य की ओर सहायता नहीं देखूंगा।

उपयुक्त उक्तियों से इब्राहीम बिन अघम की पारलौकिक प्रेम की प्रगाढ़ता प्रदर्शित होती है।

फुजामल बिन अयाज (मृ० स० ८५८) और इब्राहीम बिन अघम दोनों ने अपनी सम्पत्ति तथा राज्य का परित्याग कर बसरा के किसी शिष्य को

मुरीद बनाया था । इन सभी सत्तों में 'खौफ' की भावना भी प्रेरक तत्त्व के रूप में विद्यमान थी किंतु राबिया वसराविया ने सूफीमत में प्रेम भावना की स्थापना की । उसने अपना सबस्व ईश्वर चिंतन में अर्पित कर दिया । राबिया में आत्म समर्पण तथा पूर्ण विश्वास की भावना प्रधान थी । राबिया का पूरा नाम राबिया अल अदाविया अलवसरी था । उसका जन्म स्थान वसरा था । इसलिए उसे राबिया अल वसरिया भी कहते हैं । उसका जन्म सन् ७१७ ई० के लगभग वसरा में हुआ था । अतार ने राबिया का परिचय अति आशंसात्मक ढंग में दिया है । 'उसके हृदय में परमात्मा का प्रेम तथा उसका विरह व्याप्त था । उसकी एकमात्र ईहा ईश्वर प्रेम में लीन हो जाने की थी, वह निष्कपट नारी दूसरी मरी के समान थी ।' राबिया को परम प्रेम ही प्रिय था । वह कहती है—'हे नाथ ! तारे चमक रहे हैं, शीघ्र निद्रा निमग्न हैं सम्राटों के द्वार बंद हैं, प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेयसी के साथ और मैं यहाँ एकाकी आपके साथ हूँ । वह केवल परमात्मा की कृपा और पर ही विश्वास करती थी । उसका कहना था— हे ईश्वर मैं आपको द्विविध प्रेम करती हूँ एक तो स्वाध्याय पूर्ण कि मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य या ध्यान नहीं करती, दूसरा शुद्ध प्रेम है कि अब आप मेरे मन का आवरण हटा दें तो मैं आपका साक्षात्कार कर पाती । जोना ही रूपों में श्रेय आपका है । वह आपकी ही कृपा का प्रभाव है ।'¹

- 1 She the secluded one was clothed with the clothing of purity and was on fire with love and loving and was enamoured of the desire to approach the lord and be consumed in his glory She was a Mary and a spotless woman "

Margaret Smith Rabia the mystic P 54

- 2 'Two ways I love thee Selfishly
And next and worthy is of thee
Tis selfish love that I do naught
Save Think on thee with every thought
Tis purest love when man dost raise
The evil to my adorning gaze
Not nunt the praise in that or this,
Thine is the praise in both Iwis '

भय की भावना का सवसा अभाव प्रेममयी राबिया में भी नहीं था । उसे रमूल मुहम्मद का डर था क्योंकि सम्भवतः प्रेम की उपासिका राबिया परमात्म चिंतन में 'हम्मद के महत्व का ध्यान नहीं रख पाती थी उसे मध्यस्थ की आवश्यकता ही न थी । उसने प्रायना की— 'हे खुदा के रमूल । तुम्हें कौन नहीं प्यार करता किन्तु परमेश्वर के प्रेम से मेरा हृदय इतना अधिक ओत प्रोत है कि किसी अर्थ के लिए धना या प्रेम का भाव मरे हृदय में कभी आता ही नहीं । ”

राबिया उन प्रथम मुस्लिम साधका में थी जिन्हें वास्तव में रहस्यवादी कहा जा सकता है । परमात्मा के प्रति उसका प्रेम इतना अधिक था कि उसे दूसरी किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी । उसका कहना था कि प्रेम के द्वारा ही परमात्मा को पाना सम्भव है । उस प्रेम की आँच में मानव मन के सारे कलुष जलकर भस्म हो जाते हैं और परम प्रियतम का पाना सहज हो जाता है । इस्लाम धर्म के कम काण्ड की राख में राबिया के प्रेम की नित्य जलती हुई लौ ने उस अचकार युग में मुसलमानों के हृदय पर अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया ।¹ परमात्मा का प्रेम पान के लिए और उसके अनंत सौंदर्य का दर्शन प्राप्त करने के लिए वह सवस्व त्यागन की तत्पर थी । 'हे परमात्मा, इस सत्सार में हमारे लिए जो कुछ भी तुमने निर्दिष्ट कर रखा है उसे अपने शत्रुओं को प्रदान कर दे । और परलोक का जो कुछ है, उसे अपने उपासकों को प्रदान कर दे । मेरे लिए तो तुम ही यथेष्ट हो मैं और कुछ नहीं चाहती । उसकी यह भी प्रायना थी— 'हे खुदा । यदि मैं नरक के भय से तेरी उपासना करती हूँ तो तू मुझे नरक में जला और यदि मैं तेरी उपासना स्वर्ग प्राप्ति की आशा से करती हूँ तो तू मुझे स्वर्ग से वंचित ही रख किन्तु यदि मैं तेरी उपासना केवल तेरे लिए ही करती हूँ तो तू अपना चिद सौंदर्य मुझ से दूर मत रख । ’

- 1 Apostle of God who does not love thee ? but love of God hath so absorbed me that neither love nor hate of any other thing remains in my heart

A Literary History of Arabs, P 234

—By R. A. Nicholson

- 2 R. A. Nicholson Selected Poems from the Diwan : Shamasi Tobriz (1898)

- 3 Margaret Smith Studies in Early Mysticism in the Near and middle East (1931)

उस परम प्रियतम का प्रेम प्राप्त किये बिना और बिना उसके मिलन के प्रेमी की प्रेम यातनाओं का अवसान नहीं होगा और न उसे शांति ही मिलेगी। उसका सारा जीवन दरिद्रता परमात्मा का ध्यान तथा स्मरण और सर्वाधिक प्रेमार्ति में लपट होते हुए बीता। उसका समस्त जीवन प्रेममय था। उस प्रेम के समस्त सासारिक सभी वस्तुएं तुच्छ थीं। राबिया में ही सर्वप्रथम प्रेम दशन का उदात्त और प्रसर रूप सामने आता है। वह अत्यंत कहती हैं—'तुदा के प्रेम ने मुझे इतना अभिभूत कर दिया है कि मेरे हृदय में अब किसी के प्रति न तो प्रेम होय रहा न घृणा होय रही।'¹

अनन्य भक्ति और प्रेम तथा परमात्मा के हाथों में समस्त रूपण स्वयं को समर्पित कर देना ही राबिया की अपनी विशेषता थी। जिसने उसके परवर्ती साधकों को अत्यधिक प्रभावित किया।

द्वितीय युग—(८७० ई० से १००० ई० तक)

द्वितीय युग के प्रारम्भ होने के समय तक अब्बास वंश का शासनकाल प्रारम्भ हो गया था। उसके अन्त्य वरमक के प्रोत्साहन द्वारा भारतीय विचार धारा का प्रचार भी बढ़ने लगा। मामू ने अपने दरबार में भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को अध्यात्म विषयक विचार विनिमय के लिए उत्साहित किया जिसका प्रभाव नवविकसित सूफीमत पर भी पड़ा। इसके अनेक बातों पर तक बितक प्रणाली का भी आश्रय लिया जाने लगा। इसके अतिरिक्त हारुन रशीद के राजत्वकाल से अनेक यूनानी वास्तुशिल्प के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद काय प्रारम्भ हुआ और उसके साथ ही शाय, भारतीय दशन और विशेष कर बौद्ध दशन एवं वेदांत दशन का भी अध्ययन और अनुशीलन होते रहने से इस्लाम धर्म के श्रोत्रो में नितांत नवीन श्रोत्रो का समावेश हो गया। ईरानी सस्कृति ईसाइयों का भावयोग तथा प्लोटिनस का नव-अपलातूनी सतवाद भी इस अवसर पर प्रभावित करते हुए प्रतीत होते थे और सबके सम्मिश्रण व समन्वय द्वारा एक ऐसी विचारधारा की सृष्टि हुई, जिसने परम्परागत इस्लामी धर्म के भीतर एक प्रकार की प्राति उपस्थित कर दी। फलतः उस समय बढ़ते हुए बुद्धिवाद को दबाने के लिए शासकों को सजग एवं सचेष्ट होना पड़ा और समय समय पर मृत्यु दंड की व्यवस्था भी होने लगी।

इस समय के प्रसिद्ध सूफियों में सर्वप्रथम मारुफुल करशी का नाम आता है। इनका जन्म मेसोपोटामिया के एक प्रमुख नगर बासित में हुआ था और

मृत्यु सन्त ८७२ में हुई थी। इन्होंने नव सूफीमत का पहल प्रचार किया था। इन्होंने सूफीमत की जड़गवली के लिए जो जो परिभाषाएँ बनायीं व सभी माँय थी और य सूफियों में श्रद्धा के पात्र हो गये थे। इन्होंने एक सच्चे फकीर कामकाज, भगवच्चिन्तन, भागवदाथ्य एवं भगवदुद्दिष्ट कायकलाप के आधार पर निर्धारित किया था और ससम्बुध अथवा सूफीमत की प्रमुख विशेषता परमतत्त्व की अनुभूति एवं सासारिक विषया से विरक्ति में मानी थी। कहा जाता है कि परमात्मा के प्रेम में अहर्निश निमग्न रहता था। उसका कहना था कि मनुष्य की शिक्षा से प्रेम नहीं होता वह परमात्मा की कृपा और प्रसन्नता से ही सम्भव हो पाता है। इनके समकालीन अबू सुलैमान अब्दुल रहमान बिन अतिग्या अल दारानी (म० स० ८८७) का भी नाम सूफी साधकों में आदर के साथ लिया जाता है। यह वासित का निवासी था। उसने मारिफत (परमज्ञान) के सिद्धांत पर पूर्ण रूपेण प्रकाश डाला है। यह अतीव कोमल हृदय का व्यक्ति था। यह अत्यंत धैर्यवान् था। इसने प्रेम को हृदय का अलंकार माना है। इसका कथन है—प्रत्येक वस्तु के लिए एक एक अलंकार है। हृदय का अलंकार सहज प्रेमाव्रभाव है।^१

अबू अल दारानी के कुछ ही समय बाद जून नून मिस्त्री का नाम आता है। यह मिश्र देश का निवासी था। इसका जन्म सन् ७९६ ई० में इलमीम में हुआ था और उसकी मृत्यु सन् ८६० ई० में हुई। वह एक बहुत बड़ा सूफी साधक और विचारक था। उसने सूफी सिद्धांतों की बड़ी सुन्दर विवेचना की है। वह सर्वप्रथम व्यक्ति है जिसने सूफी मार्ग का विशद विवेचन किया है। राबिया ने जिस प्रेम भावना का परिचय दिया था, उसका अनुभव जून नून ने किया। उनका कहना था कि—'प्रभ ईश्वरीय देन है जिसे किसी मानव से महा सीखा जा सकता है।'^२ जून नून मिस्त्री ने पूर्ण तीहीद की विवेचना कर इस्लाम को प्रेम का महत्त्व समझने के लिए बाध्य किया। अल्लाह की अनमता प्रतिपादित करते हुए उसने अन्ध सभी वस्तुओं के अस्तित्व का राग अलापा। उसने कहा कि ईश्वरीय प्रेम एक रहस्य है जिसका केवल अनुभव करने का श्रेय ही प्रेम है। जून नून न सूफीमत को अपनी विचार परिपक्वता से पुष्ट किया। उन्होंने इस्लाम और मारिफत में ज्ञान और प्रज्ञान में भेद स्थापित किया और स्पष्ट कहा कि ईश्वरीय ज्ञान या मारिफत का सम्बन्ध भुहव्यत या परम प्रेम

से है ।^१ इन्होंने सूफीमत में सर्वप्रथम अध्यात्म विद्या और भाववेश या हाल का भी समावेश किया । जून नून ने सभा, हाल, तौहीद सीबा, करामात आदि प्रमगो पर भी विचार प्रकट किये तथा प्रेम की साध्य रूप में प्रतिष्ठित कर दिया ।

इस युग के अन्य प्रसिद्ध सूफियों में अबू माजीद अथवा वायजीद अल विस्तामी का नाम आता है । ये पर्सिया के निवासी थे । इनका जीवन के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है । ये मातमक्त थे और माता की वृत्ता से ही आध्यात्मिक साधना में लगे थे । सूफी मिठात के विश्वास में इसका बहुत बड़ा योग है । ये पर्सिया के विस्ताम स्कान के निवासी थे, इसीलिए वह अल विस्तामी कहलाते हैं । इनका पूरा नाम अबू माजो^२ तैफू^३ बिन ईसा अल विस्तामी था । इन्होंने भी प्रेम की अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है । ज्ञान की भाँति प्रेम भी तत्त्वतः एक दबी बरदान है, यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो प्राप्त की जा सके । प्रेम एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति है जो साधक का आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर कर देती है । यह एक ऐसी वासना है जो सभी वासनाओं का उरसा दूर कर देती है । यदि सार ससार के लाग भी प्रेम का आकर्षित करना चाहें तो नहीं कर सकते और यदि वे इस हटाने का अत्यधिक प्रयास करें तो वे ऐसा नहीं कर सकते ।^४ परमात्मा से वही प्रेम करते हैं जिनसे परमात्मा प्रेम करना है । वायजीद ने कहा है—^५ मैं समझता था कि मैं परमात्मा से प्रेम करता हूँ परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर ज्ञात हुआ कि भरे प्रेम करने से पहले ही वह मुझ से प्रेम करता है ।^६ वह प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अन्यत्र कहता है कि—
‘हुनर्या से शत्रुता कर जब मैं परमात्मा की गरण में गया तो उसका प्रेम ने मेरे ऊपर इतना अधिकार कर लिया कि मैं अपना स्वयमेव शत्रु बन गया ।’
इस प्रेम में ही भारीप (ईश्वरीय ज्ञान) प्राप्त होना है । कहा जाता है कि याहिया बिन मुआय्य ने अबू माजीद के पास लिखा कि उस आदमी के विषय में आपकी क्या राय है जो प्रेम सिंधु का एक बिन्दु पीकर मस्तमौला बन जाता है ।^७

1 R. A. Nicholson *Idia of Personality in Sufism* P. 91

2 डा० नमनेश्वर चतुर्वेदी—इस्लाम के सूफी साधक—पृ० ९७

3 डा० रामपूजन तिवारी—सूफीमत—साधना और साहित्य—पृ० ३१५

4 वही ३१०

5 A. L. Hujwiri—*The Kashf Al-Mahjub* Trans. Roynold A. Nicholson (1911)

वायजीद ने उत्तर में लिखा कि 'आप उससे विषय में क्या कहेंगे, यदि ससार के सभी सिन्धु प्रेम की मदिरा से परिपूर्ण कर दिये जाय, इन्हें भी जाय और फिर भी अपनी पिपासा शालीन अत्यधिक चिल्लाता रहे।'¹ तथापि प्रेम को वह साधक और परमात्मा के मध्य पट सदृश मानता है। 'क्योंकि प्रेम के अस्तित्व में ही इतत निहित है।'² वह उसी को श्रेष्ठ मानता है जिसकी कोई अपनी इच्छा न हो और परमात्मा की इच्छा ही उसकी इच्छा हो।

इसके पश्चात् बगदाद निवासी अल जुनद (म० स० ९४६) ने उक्त मिस्री की उपदेशावली को क्रमबद्ध रूप में प्रकाशित किया और उनके शिष्य खोरासानी शिबली ने उसका सबन्ध प्रचार और प्रसार किया। जुनद अपने समय के सूफी साधकों में अग्रगण्य माने जाते थे। किन्तु वे सनातन पंथी इस्लाम एवं सूफीमत में सामञ्जस्य स्थापित करने के भी पक्षपाती थी। जुनद ने प्रेम को परिभाषित करते हुए कहा है 'प्रिय की विशेषताओं में अपनी विशेषता का विलय ही 'प्रेम' है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रेम की विशेषता यह होती है कि अपने निज के व्यक्तित्व को समाप्त कर दिया जाय। यह आनन्द ऐसा है कि इस पर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता है। यह ईश्वरीय कृपा है जो निरन्तर विनय करते रहने और आकांक्षा करते रहने से प्राप्त होती है।'³

इस युग में सूफियों में सबसे प्रसिद्ध नाम हुसैन बिन मसूर अथवा हल्लाज का था। उसका पूरा नाम अब्दुल युगीस अल हुसा बिन मसूर अल हल्लाज था। उसका जन्म ईसा की नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (सन ८५८ ई०) में हुआ था। 'फिहरिस्त' के अनुसार वह पर्सिया का निवासी था किन्तु इस बात का स्पष्ट पता नहीं चलता कि वह निशापुर, मव तालीकन, रे अथवा कूहिस्तान में कहाँ का निवासी था। इब्नुल जबजी⁴ के अनुसार अल हल्लाज का पिता मह फारस के राजा स्थान का था और भागी धर्म का अनुयायी था। २६ मार्च सन ९२२ ई० ग्रेगोरियन कैलेंडर की उसे झूली पर चढ़ा दिया गया।

1 A. L. Hujwiri—The Kashf Al-Mahjub Trans. Roynold A. Nicholson (1911)

2 Ibid

3 R. A. Nicholson Mystic of Islam page 112

4 E. G. Browne Literary History of Persia, Page 428

5 Ibid p 434

यजीद ने जिस सत्य की अनुभूति की थी। मसूर ने उसी सत्य को आत्मरूप बना लिया। मसूर ने स्वयं का ही सत्य माना है। वह अनर्थ हो गया। प्रेम को उसने अरमात्मा के सत्य का सार के रूप में स्वीकार किया है। वह मानता है कि प्रेम की महत्ता बिना प्रतिकार किये दुख सहिष्णु होने में है। उसका कथन है मैं वही हूँ जिसको प्रेम करता हूँ, जिसे प्रेम करता हूँ वह मैं ही हूँ। हम एक गरीर के दो प्राण हैं यदि तू मर जायता है तो उसे देखता है। यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है।

मसूर अल हल्लाज ने कहा है ईश्वर से मिलन सभी सम्भव है जब हम कष्टों के मध्य से होकर गुजरें।¹ इसीलिए सूफी साहित्य में प्रेमी को भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ता है। उसका सबल दम विरह और तड़पन है। अन्तुल कादिर जिलानी ने अपनी एक ग़ज़ल में कहा है हमारे हाथ के दरवाजे बंद दाखिल हो जा क्योंकि मेरे घर में दद व सिवाय और कोई नहीं है।² एकबार एक फकीर ने उससे पूछा कि प्रेम क्या है? उसने उत्तर दिया आज देखाने कल देखोग परमो दसोग।

इस काल के सूफी साधकों में अफराबी का एक विशिष्ट स्थान है। सूफी दार्शनिक अल फराबी (सन ९५०-१००७ ई०) ने प्रेम को ही ईश्वर माना है और सृष्टि का कारण भी उन्होंने प्रेम का ही स्वीकार किया है। उसका मत है भौतिक वस्तुओं तथा ज्ञान और बुद्धि से परे एक विशिष्ट वस्तु है, जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम के सहार इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु जिसमें व्यक्ति भी सम्मिलित है अपनी समग्र पूर्णता पर पहुँच जाती है।³

1 R. A. Nicholson Idea of Personality in sufism p 29

2 If you do not recognise God he sayest at least recognise his signs I am that sign I am the creative truth
Studies in Islamic Mysticism, p 84

By-R. A. Nicholson
3 Outlines of Islamic Culture page 350

४ 'व हजा वाना दर्द आ अज दर्द काशा नये मा ।'

१ 'के कसी नेस्त वजुज दर्द तो दरसा नये मा ॥'

—दीवाने गीसुल आजम पृ० १७ क़ुतुबन खाना नजीरिया
उदू बाजारा देहली ।

5 R. A. Nicholson Mystics of Islam pages 122.

सूफियों का कथन है कि ईश्वर ने अपना बोध कराने के लिए सृष्टि की रचना की। अपने मत की पुष्टि के लिए एक हृदीस का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। १। 'मैं एक गुप्त कोण था। मरी ईहा थी कि मुझे सब लोग जानें। अतः मैंने मखलूक (मण्डि) की रचना की। 'अल फराबी ने भी इस स्वीकार किया और कहा है कि 'ईश्वर स्वयं प्रेम है। सृष्टि की रचना का कारण भी प्रेम ही है। प्रेम के सहारे सृष्टि की इकायाँ प्रेम के महास्रोत में, जो पूर्ण सौंदर्य और सर्वोत्तम भी हैं निमग्न हो जान के लिए पणरूपेण मरग्न हैं।'

सुप्रसिद्ध सूफी अजीज बिन मुहम्मद नफ्थी (सन १२०६ ई०) ने भी कुछ इसी प्रकार का मत प्रकट किया है। उनका कथन है आकषण ईश्वर का जो व्यक्ति अपनी ओर आकृष्ट करता है वाय है। जब तक व्यक्ति पर ईश्वर की अनुकम्पा नहीं होती और उसका अपनी ओर आकृष्ट नहीं करता वह वैभव और गौरव में आसक्त रहता है। जब व्यक्ति इस ममार को आकषण का परित्याग पूर्णरूपेण करता है तब वह ईश्वरोन्मुख हो जाता है और जब उसके हृदय में केवल डब-भात्र ईश्वर गीत रहता है तब वह प्रेम में परिवर्तित हो जाता है।'

तृतीय युग (१००० ई०-१५०० ई० तक)

सूफीमत का वास्तविक इतिहास उसने तृतीय युग से ही प्रारम्भ होता है। सूफीमत का सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान कर उसके विभिन्न सिद्धांतों पर प्रकाश डालने वाले इस युग के प्रणेतारों में कालावाधी (म० म० १०५२) हुज्वरी (म० स० ११४९) एवं गजाली (म० म० ११६८) के नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। कालावाधी ने 'सूफी मतवाद का प्रकृत स्वरूप निणय' का समानाधिकार ग्रहण लिया। जिसके द्वारा उन्होंने यह प्रतिपादित कर दिखाया कि विचारपूर्वक तैखन पर यह मत मूल इस्लाम धर्म का किसी भी प्रकार विरोधी नहीं है प्रत्युत उसी के सिद्धांतों का पोषक है।

इसी प्रकार अबुलहसन अल हुज्वरी ने भी अपनी रचना 'कश्फुल महजब' (रहस्योदघाटन) के द्वारा सूफीमत एवं इस्लाम धर्म के मध्य पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा की। इन्होंने प्रेम के महत्त्व को स्वीकारा है।

१ कुतो कजन मखफिसन पयह बवतो अन ओ रफा फखलकु तुल खल्फ ।

—कुर्बान शरीफ

2 A M A. Shushtery Outlines of Islamic Culture page 311

३ मकसद अवस का अंग्रेजी अनुवाद 'आरियटल मिस्टिसिज्म' प० १९

कदफुल महजूब' में हुज्वरी का कथन है 'आपको जानना चाहिए कि प्रेम को दायनिका ने तीन प्रकार से प्रयुक्त किया है । प्रथम वह प्रेमास्पद के लिए अविराम लालसा झुकाव तथा आसक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है । जिसका सम्बन्ध सासारिक वस्तुओं तथा प्राणिमा जीर उनका पारस्परिक प्रेम से होता है । पर वह ईश्वरीय प्रेम नहीं कहा जा सकता । ईश्वरीय प्रेम सर्वोत्तम वस्तु है । द्वितीय प्रकार के प्रेम का अर्थ ईश्वरीय कृपा है जो ईश्वर द्वारा किसी व्यक्ति को प्राप्त होती है, ऐसे व्यक्तियों को ईश्वर पूरा साधुता प्रदान करता है और अपनी अपूर्व कृपा से उसे विशिष्ट बना देता है । तृतीय प्रकार का प्रेम वह हाता है जिसमें ईश्वर व्यक्ति को सदैवक्य के लिए सदैवगुण प्रदान करता है ।'^१

प्रेम के स्वरूप को अत्यधिक स्पष्ट करते हुए हुज्वरी ने लिखा है कि "ईश्वर के प्रति मानव का प्रेम वह गुण है जो केवल उन पवित्र व्यक्तियों में पड़ा और गरिमा के रूप में प्रकट होता है जिनकी ईश्वर में आस्था है इस लिए कि वह अपने प्रिय को सत्पुष्ट कर सकें और उसका दर्शनाप भिन्न हो उठे । उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु में उनका मन न रहे । ऐसा व्यक्ति उसके स्मरण में लगा रहता है और किसी अन्य का स्मरण नहीं करता है ।"

प्रेमोद्य से लेकर ईश्वर से मिलन या उसमें पना होने तक की यात्रा में साधक को अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना अनिवार्य है । इन बाधाओं में भी प्रेम निरंतरता है । हुज्वरी ने लिखा है 'प्रिय के द्वारा जो प्रेमी को दुःख पहुँचाया जाता है उसमें प्रेमी को आनंद की प्राप्ति होती है । प्रेमी में प्रेम होता अतः वह प्रिय की कठोरता और उदारता दोनों को एक ही प्रकार सेलता है ।', उहीन शिष्य की कथा लेकर इसको स्पष्ट किया है ।

प्रेम को अत्यन्त परिभाषित करते हुए हुज्वरी ने कहा है कि 'प्रेम प्रियतम की प्राप्ति के लिए विवर्तता का ही नाम है ।'

उपयुक्त साधकों में अधिक गम्भीर विचारक और व्याख्याता अबुलहीद मुहम्मद अल गजाली हुए । जिनकी विद्वत्ता एवं योग्यता के कारण सूफीमत एवं मूल इस्लाम धर्म का पक्कत्व प्रायः दृष्ट होता था, दीख पड़ा और प्रथम

१ कदफुल महजूब अनुवादक-निकलसन पृ० ३०६

२ वही पृ० ३०६-७

३ आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर वा० २ पृ० ५०२

को द्वितीय ने अतगत सत्ता के लिए स्वीकृत कर लिया गया । ये 'इस्लाम धर्म में प्रमाण स्वरूप' बने जाते हैं और सूफी अपने मत को सुगवस्थित करने वालों में अतिउच्चस्थान प्रदान करते हैं । अल गजाली ने सौन्दर्य को ही प्रेम का जनयिता माना है । वे कहते हैं कि सौन्दर्य भा धनिष्ठता ही प्रेम की धनिष्ठता है । उनका मत है 'सौंदर्य वह है जो वास्तव में प्रेम को जन्म देता है । अतः आत्मा सासारिक प्रेम पर ही नहीं अवलम्बित रहती प्रत्युत इस सौंदर्य से होते हुए उसकी दृष्टि अत्यन्त लगी रहती है । वह सर्वोत्तम से प्रेम करता है जिस ईश्वरीय प्रेम कहते हैं । यह ससार के सौंदर्य का मूल स्रोत है । इस बात को कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि जहाँ सौंदर्य होगा वहाँ प्रेम भी सहज ही हो जायेगा । सौंदर्य की माया जितनी ही अधिक होगी प्रेम का धनत्व भी उतना अधिक होगा । पूरा सौंदर्य ईश्वर में है अतः वही सच्चे प्रेम का अधिकारी है ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि अल गजाली ने भी प्रेम की महत्ता स्वीकार करते हुए सच्चे प्रेम का अधिकारी ईश्वर को ही स्वीकार किया है ।

इस काल के दूसरे प्रसिद्ध सूफी विद्वान शेख शहाबुद्दीन सुहवर्दी का नाम आता है ।, शेख सुहवर्दी का जन्म सन् १२९१ में हुआ था । उन्होंने भी प्रेम को परिभाषित करते हुए कहा है 'सौंदर्य के गहरे चिन्तन के लिए हृदय का झुकाव ही प्रेम है ।'

शेख सुहवर्दी ने अतिरिक्त एक अथ सूफी विद्वान ने लगभग वसा ही काय किया जिसका नाम शेख मुहीउद्दीन इल अरती (स० १२२१-१२९७) था ।, इलुल तरवी का प्रेम, विषयक दृष्टिकोण अथ सूफी साधका से, भिन्न है । उसने नारी प्रेम को भी ईश्वरीय प्रेम माना है । अपने ग्रन्थ-फुसुमुल हिकाय' में, उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार ईश्वर की प्रतिच्छाया के रूप में ईश्वर का निर्माण हुआ है, उसी प्रकार पुरुष की प्रतिच्छाया के रूप में स्त्री की रचना हुई है । इसलिए 'यक्ति स्त्री और ईश्वर दोनों से प्रेम करता है । स्त्री का, पुरुष से वही सम्बन्ध है, जो ईश्वर का प्रकृति से है । अतः इस अर्थ में जब स्त्री से प्रेम किया जाता है तो वह प्रेम ईश्वरीय होता है ।'

१ अल गजाली दी मिस्तिव-भागरट स्मिथ प० १०९

२ शेख शहाबुद्दीन उमर बिन सुहवर्दी आवारिफुल मारिफ, अनुवादक—

एच० विल्वर फोस ब्लाक, प० १०१

३ A M A Shushtery, Outline of Indian Culture, page 390

रूमी ने भी एक स्थान पर कहा है "स्त्री ईश्वर की किरण है। वह सासारिक प्रेमिका नहीं है। वह निर्माता है, निमित्त नहीं।" पर रूमी और अरबी की विचारधारा में मौलिक अंतर यह है कि रूमी अपने जीवन दशन में स्पष्ट हैं कि सासारिक स्नेह ईश्वरीय स्नेह नहीं है। उनका कथन है 'इस ससार में रहकर आत्मा को गुंथ कर लो तब प्रियतम (ईश्वर) प्राप्त होगा। एक शेर में भी उ हान कहा है 'ससार के नश्वर पदार्थों से प्रेम किस काम का प्रेम तो वह है जो ईश्वर से होता है।'

इब्नुल अरबी के अनुसार सासारिक प्रेम भी ईश्वरीय प्रेम की भांति है। कहा जाता है कि निजाम नामक एक स्त्री से उनका स्नेह सम्बन्ध था। 'तजमानुल अव्वाक' ने उससे सम्भवतः उसकी प्रति ही अपना प्रणय निवेदन किया है। निजाम अति रमणीया थी। फकीरी जीवन व्यतीत करती थी। प्रगल्भ वक्ता भी थी। अतः स्पष्ट है कि नारी प्रेम को भी इब्नुल अरबी ईश्वरीय प्रेम की भांति पवित्र मानते हैं।

इब्नुल अरबी यह घोषित करता है कि 'प्रेम कृपी प्रेम और परमात्मा के प्रति आसुचय से श्रेष्ठ अथवा कोई धर्म नहीं है। प्रेम सब धर्मों का सार है। चह्ने वह जो रूप धारण करे। सच्चा रहस्यवादी इसका सदैव स्वागत करता है। जब प्रेमी में प्रेम का पूर्ण स्फुरण हो जाता है तब वह ससार को समभाव से देखने लगता है। उसके हृदय में मुसलमान, ईसाई हिन्दू का कोई भेद भाव नहीं रह जाता है। 'उसका धर्म, केवल एक रह जाती है।' वह है प्रेम का धर्म।' रूमी ने भी एक स्थान पर कहा है। 'प्रेम धर्म सभी धर्मों से अलग है। ईश्वरानुरागियों के लिए ईश्वर के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं है।'

इब्नुल अरबी ने अपने ग्रन्थ तजमानुल अव्वाक में प्रेम प्रभाव को स्पष्ट करते हुए कहा है 'मेरा हृदय प्रत्येक रूप के मोह्य हो गया है। यह मृग शावकों के लिए चारागाह है और ईसाई साधुओं के लिए मठ है मूर्तियों के लिए मन्दिर है और हाथी के लिए बाड़ा है। शरीरगत की तस्ती और कुरान का ग्रन्थ है मैं प्रेम धर्म का अनुगामी हूँ। प्रेम को उठ मुझे जिस ओर ले जाते

1 R. A. Nicholson, Rumi the Poet and Mystic, page 44

२ : मौलाना रूम थी जगदीशचन्द्र वाचस्पति पृ० १६९

३ दी फिलासफी आफ इब्न अरबी-रोम जादयु पृ० ८५-८६

४ रूमी पोयट एंड मिस्टिक थी ए० निक्ससन पृ० १७१

हैं, उस ओर जाता हूँ । मेरा धर्म और मेरा विश्वास सच्चा धर्म है ।”

प्रेम बुद्धि का मार्ग नहीं चुनता । उसका पथ श्रद्धा और विश्वास का होता है । सूफिया ने प्रायः इस पर बल दिया है कि प्रेम मार्ग में अग्रसर होना चाहते हैं । ता तब ओर बुद्धि का सहारा न लो । अपने का पूर्णरूपेण हो जाओ । स्वामी मुईनुद्दीन चिश्ती ने कहा है ‘ए मुईन ! अकल की आँख से दोस्त का हस्त न देख । तू मजनु की आँख से लला व हस्त को देख ।’^१

तरहबी गताली सूफीमत का प्रचार काल है । यह वही समय है जब ईरान के प्रमुख सूफी काव्यकारों ने इस अपनी पुष्ट लयनी द्वारा हृदयवादी बनाया । जिसका अनुकरण भारतीय सूफियों ने किया । सूफीमत की सबसे सफल अभिव्यक्ति सनाई काव्य में हुई । सनाई (म० स० ११८८) ने सूफिया रंग में ‘हदीक सुल हकीमा’ का श्रुति लिखा । इसके पूर्व अरबी में अलसर्राज, अल कुशरी तथा, अल असारी गद्य में सूफी मत को प्रकट कर चुके थे । सनाई से काव्य की प्रेरणा सम्भवतः इ ही ललकों से मिला । फारसी के परवर्ती सूफी काव्य पर सनाई का पूर्ण प्रभाव है । हमी ने एक श्रम में सनाई की मायता प्रदान की है—

अत्तार कहूँ बूद ओसनाई दु खरमे ।

मा अब पयसनाई यो अत्तार आम्रम ॥”

१ लकद सारा कूल बी राखिलन कुल्ला सूरतिन ।

फमर ई लगिज लानन व शरन ते रहूँ बानिन ॥

व वसीतुन ला ओसानिन बकावतो ताय फिन ।

व अल बाहो तोरातिन वमूसह फो कुरानिन ॥

अदीनो वे दीनिल हुअ अनी बतज्जहत ।

रबाभी वुहूँ पदीना दीनी व ईमानी ॥’

—तजु मानुल अस्वाक ‘गीब’ प० १९, रायल एशियाटिक सोसाइटी लंदन ।

२ ‘मुईन बचदमे खिरद हुस्ने दोस्त न नुमायद ।

बदी नदीयये मजनु जमा लला र ॥

—नीवान ख्वाजा गरीब नेवाज प० २४ सु० मुस्लिम अहमद निजामी उद्दू बाजार, जामा मस्जिद, दिल्ली ।

“अत्तार रूह था और सनाई उसकी दो आँखें । हम सनाई तथा अत्तार के वाद आय हैं ।”

सनाई की परम्परा में अनवर प्रख्यात कवि हुए । जिनमें उमर खय्याम (म० स० ११८०), निजामी (म० स० १२६०) और अत्तार (म० स० १२८७) के नाम प्रमुख हैं । इन फारसी कवियों की परम्परा बहुत आगे तक चली और इनमें रुमी (म० स० १३३०) सादी (म० स० १३४९), गम्मतरि (म० स० १३७७), हाफीज (म० स० १४४७) एवं जामी (म० स० १५६९) जैसे प्रतिभाशाली कवि उत्पन्न हुए । जिन पर फारसी साहित्य की आज भी परब है ।

इन कवियों ने लौकिक कथामा या प्रताका के माध्यम से अपनी दिव्य भावनाओं का प्रकाशन किया है । ईश्वरीय प्रेम का प्रकट करने के लिए लौकिक प्रेम की भाषा को अपनाया है । सामाजिक स्तर ही वह वर्णमाला है, जिसको हृदयगम कर सूफी ईश्वरीय ममार में प्रवर्ण करना चाहते हैं । सूफियों का एक मन्त्राला है ‘अल मजाज़ो कतस्तुज हरीक’ अर्थात् मजाज़ हकीकत का फल है ।” अन सामाजिक प्रेम और उसकी भाषा अपना कर चलने में सूफियों को किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई ।

निजामी का लला मजनू सूफी विचारधारा की एक प्रीत कृति है । जिसमें कवि ने प्रेम साधना को पूर्णस्वेष स्पष्ट किया है । प्रेम का महत्त्व बतलाते हुए उसने लिखा है जो इश्क हमेशा नहीं रहने वाला है वह जवानी की स्वादिष्ट शात का खेल है । इश्क वह है जो कम न हो और उससे कदम न हटे । मजनू जब तक जिन्दा रहा इश्क का बीस उठाता रहा । फूल की तरह इश्क की नसीम के साथ गुग रहा ।

लला मजनू ने प्रेम के माध्यम से हकीकी प्रेम को स्पष्ट करने का प्रयास

- १ “इश्के के न इश्क आवे जानीस्त ।
बाजी चये शहवते जवानीस्त ॥
इश्क आ धागद कि कम न गदद ।
ता वागद अजा कदम न गदद ॥
ता बि दा व इश्क वारवश बुद ।
चू गुल वनसामि इश्क खुशबुद ॥

लला मजनू निजामी, पृ० ३०

नवलकिशोर प्रस लखनऊ १८८० ई० ।

जलालुद्दीन रूपी यह घोषित करता है कि आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम परमात्मा का आत्मा के प्रति प्रेम है और आत्मा से प्रेम करने में परमात्मा स्वयं अपने से प्रेम करता है क्योंकि आत्मा जो कुछ देवी तत्व है, उसे वह अपने पास खींच लेता है ।

इस प्रकार सूफी साधकों ने आत्मा का परमात्मा के प्रति और परमात्मा का आत्मा के प्रति प्रेम-दोना को एक दूसरे का पूरक बताते हुए अ-यो-यथित सिद्ध किया है ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के फारसी के श्रेष्ठ सूफी कवियों में जामी का अति महत्वपूर्ण स्थान है । जामी एक बहुत बड़ा कवि एवं बहुत बड़ा विचारक और एक बहुत बड़ा साधक था । उसका पूरा नाम मुल्ला नूरुद्दीन अब्दुरहमान जामी था । वह खुरासान के जामनगर का निवासी था । इसीलिए वह जामी कहलाया । उसका जन्म सन् १४१४ ई० में हुआ था । वह सूफिया में नवश-बिदिया सम्प्रदाय का था । उसने परमात्मा को परम सौन्दर्य कहा है । उसका कथन था कि सुन्दर वस्तुएँ मानो उस परम सौन्दर्य के साथ हमारा सम्बन्ध स्थापित करती हैं क्योंकि परमात्मा न अपने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए ही सृष्टि की रचना किया है । इसीलिए वह प्रेम को साधना में स्थान देता है । प्रेमकर्ता ही उसे प्राप्त कर सकता है स्वयं पर, प्रेम के द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है । सभी प्रकार के स्वाध्याय सभी प्रकार की तुच्छताओं से स्वयं को बचाने के लिए प्रेम की ही महायन्त्र लेनी चाहिए । प्रेम के सहारे उस बंधन को जो इस संसार में निबन्ध कर देता है परमात्मा से मिलन का साधन बनाया जा सकता है । यह दृश्यमान जगत ही मानो साधक और परमात्मा के बीच की बड़ी हो जाता है । अतएव जामी ने प्रेम की साधना को परमात्मा की प्राप्ति के लिए सोपान माना है ।

जामी ने यूसुफ जुलेखा में कहा है प्रेम के द्वारा ही अपने स्व से मुक्ति प्राप्त हो सकती है । युवावस्था में विचार सासारिक प्रेम की ओर झुकते हैं । यही सासारिक प्रेम इश्वरीय प्रेम में परिवर्तित हो जाता है । यह प्रारम्भिक ब्रह्ममाला है । तत्पश्चात् हम ईश्वरीय संसार का ग्रहण करते हैं । और उसके सहारे इसका अध्ययन करते हैं ।^१ जामी ने आगे कहा है "सासारिक प्रेम को छत्र कर दिया ताकि तुम्हारे होठ और अधिक् शुद्ध प्रेम का सुरापान

कर सके ।¹¹

निजामी ने प्रेम की जिस उच्च भावभूमि पर लैला मजनू के प्रेम को स्थिर किया है प्रेम की उसी भावभूमि पर (जामी) ने 'यूसुफ-जुलेखा' के प्रेम को प्रतिष्ठित किया है । जामी प्रारम्भ में ही कहता है 'उसके सौन्दर्य ने ही लला की मुखानुति को सुन्दर बनाया । जिसके प्रत्यक्ष रंग पर मजनू लुब्ध हो गया । उसने गीरी के मधुराधरो की रचना की जिस पर परवेज और फरहाद का हृदय आसक्त हो गया । उसके कारण ही यूसुफ का मस्तक उन्नत हुआ और उस पर दृष्टि डालते ही जुलेखा मिट गयी ।'¹²

जामी ने अपनी मसनवी में ईश्वर को साश्वत सौन्दर्य के नाम से अभिहित किया है । यह सौन्दर्य सासारिक समस्त सौन्दर्य में सर्वोत्कृष्ट है ।¹³ उन्होंने यूसुफ और जुलेखा में सासारिक स्नेह स्वीकार कर ईश्वरीय प्रेम प्राप्त करने का आदेश प्रस्तुत किया है । उनका वचन है 'सासारिक स्नेह का रसपान करो । जिससे पवित्र प्रेम की सुरा में परिचित हो सको । परन्तु अपनी आत्मा को वहाँ अधिक समय तक स्थिर न रहन दो । इस पुष्प से गुजर जाओ । गीघ्रता से आगे बढ़ जाओ ।'¹⁴

सूफियों का विश्वास है कि परमात्मा प्रेमस्वरूप है और वह उन व्यक्तियों को उसका भेद नहीं बतलाता है, जिसने अपने सासारिक बालुष्य का प्रक्षालन पूर्णरूपेण नहीं किया है और जिसने सासारिक वस्तुओं के लोभ का परित्याग नहीं किया है उसे उस प्रेम को प्राप्त करने का अधिकार नहीं है । जो भगवान् से प्रेम करते हैं, भगवान् उनसे प्रेम करता है । बिन्दु आत्मा परमात्मा की प्रतिच्छवि है । अतः उसे प्रेम करने का अधिकार प्रदा कर परमात्मा मानो अपने को ही अधिकार देता है । परमात्मा के प्रति उसीका प्रेम होता है जिससे परमात्मा स्वयमेव प्रेम करता है । अपने प्रेमियों के हृदय में प्रेम को घरोहर के रूप में रख देता है । सूफी कहते हैं कि परमात्मा ही प्रेम है और अपने ही

1 "Drink deep of earthly love that so my lip Many learn the Wine of holier love to sip" Ibid P 24

२ वही, पृ० २१

३ Yes thought she shrink from earthly loves call Eternal beauty = the queen of all Ibid, p 29

४ यूसुफ-जुलेखा जामी पृ० २४

आनन्द के लिए उसे मानव मानस में उत्पन्न करता है। और उसकी परिणति भी प्रेम में ही होती है। श्यायजीद विस्तारी का कहना है कि "मैं समझता था कि परमात्मा से प्रेम करता हूँ परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर ज्ञात हुआ कि मेरे प्रेम करने के पहले ही वह मुझसे प्रेम करता है। इस प्रकार के प्रेम की प्राप्ति कर प्रेमी और प्रियतम दोनों ही परितुष्ट होते हैं। प्रेम के द्वारा जब प्रेमी के सारे अतद्द्रव्य, सभी वासनाओं का अंत हो जाता है तब वह अप्रसरित होता है और उसे परमात्म दशन होत है।

परन्तु परमात्मा और मनुष्य के इस प्रेम सम्बन्ध में जो बात मानव पर लक्षित होती है वह परमात्मा पर नहीं। सूफियों ने परमात्मा के प्रति मनुष्य के प्रेम के विषय में तो अधिक कहा है परन्तु मनुष्य के प्रति परमात्मा के प्रेम की बात बहुत कम कही है। तथापि इतना स्पष्ट है कि मानव मानस के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध होना है, वसा वस्तु परमात्मा और मनुष्य के प्रेम सम्बन्धी नहीं है। मनुष्य के प्रति परमात्मा का प्रेम उसकी दयालुता के कारण है। जब कि मानव के लिए यह आवश्यक है कि वह परमात्मा से प्रेम करे। जामीन कहा है कि मैं वहाँ हूँ जिसे मैं प्यार करता हूँ और जिससे मैं प्रेम करता हूँ वह मैं ही हूँ। एक शरीर में निवास करने वाले हम दो प्राण हैं। यदि तुम मुझे देखते हो तो तुम उसे देखते हो और यदि तुम उसे देखते हो तो तुम हम दोनों को देख रहे हो।

अब सूफी साधना ने भी प्रेम के स्वरूप और उसके सम्बन्ध में काफी कहा है। सूफी साधक 'अल शिबली' का कथन है कि 'प्रेम हृदय में अग्नि के समान है जो परमात्मा की इच्छा के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं को जला कर भस्मीभूत कर देता है।' अल हुजिवरी ने कहा है कि 'परमात्मा को प्रेमी के पास इच्छा नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती कि वह सदसद् वस्तु की ईहा कर क्योंकि वह परमात्मा का प्रेमी है। उसके लिए परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी वस्तु अभीप्सित नहीं होती।'^१

अपनी समस्त कामनाओं के साथ अपन को समर्पित कर देने में ही प्रेमी सुख प्राप्त करता है। किसी भी वस्तु को अपन प्रियतम पर योछावर कर देने में उस हिचक नहीं होती वह समझता है कि अपने समस्त को देकर उसे प्राप्त कर सकता है। अब अब्दुल अल कुरशी ने कहा है कि 'सच्चे प्रेम का

१ डॉ० रामपूजन तिवारी सूफीमत—साधना और साहित्य पृ० ३१०

२ वही पृ० ३१०

तात्पर्य है कि तुम जिस परम प्रियतम से प्रेम करते हो उसे सवस्व, जो कुछ तुम्हारे पास है, समर्पित कर दो जिसमें कि तुम्हारा अपना कहने की कुछ भी 'रह जाय'।^१ इसका तात्पर्य केवल इतना ही नहीं कि प्रेम में अपनी मांसारिय वस्तुओं और कामनाओं का ही परित्याग करना पड़ता है प्रत्युत उसे पूर्णरूपेण अपने को उस परम प्रियतम को समर्पित कर देना पड़ता है। बिना ऐसा किये उस अलौकिक प्रेम का वह अधिकारी नहीं हो सकता।

शेख शादी प्रेम को पारभाषित करते हुए कहते हैं कि यह ईश्वरीय प्रेम कुछ ऐसा निराला है कि इसमें एक बार गिरफ्तार हुआ 'यक्ति कभी वचन मोक्ष की कामना नहीं करता। इस प्रेम वचन में बद्ध 'यक्ति मुक्ति ही नहीं चाहता—

‘अंगी रस न साहद रिहाई जे चंद ।

सिंहारन नसाहद सदास भज कमद ॥’^२

इस प्रेम माधुय के कारण बटु भी मीठा हो जाता है। प्रमी गूल को फूल समझ लेता है। इस प्रमी माद में गूली सिंहासन और कारागार उद्यान बन जाता है। मसूर अल हल्ताज इसी तरह में हँसते गली पर चढ़ गया था। निस्संदेह प्रेम स्वर्गीय गुणों का उत्स है। प्रेम की इस देकली को जान कर प्रेम पात्र का मन द्रवित हो जाता है। यदि कोई सच्चा प्रमी है, सच्चे प्रेम में 'याकुल है तो उसका प्यार अवश्य उस मिलेगा—

‘आफि कि गुद के गार बहालश नजर न कद ॥’^३

जब इश्क मजाजी इश्क हकीकी में परिणत हो जाता है तब साधक को आत्मानन्द की अनुभूति होती है। वह ध्यान द्वारा ईश्वरीय सौंदर्य पर विस्मय विमुग्ध होता हुआ चरम साक्षात्काराद्य प्रयत्नशील रहता है। एक ऐसी स्थिति जाती है जब प्रमी स्वयं प्रेम रूप हो जाता है। प्रेम की एक ऐसी रागिनी छोड़ देता है जिसके प्रभाव से प्रमी का सम्पूर्ण 'यत्तित्व प्रममय हो जाता है।

बर उदे दिलय नवास्त यक जम जमा इश्क ।

जा जमजमा अम जे पाए ता सर हम इश्क ॥

सच्चा प्रमी सदा प्रणय की मदिरा में मतवाला रहना चाहता है—

१ डा० रामपूजन तिवारी सूफीमत—साधना और साहित्य प० ३११

२ ईरान के सूफी कवि (शेख शादी) प० २२४

३ वही (हाफीज) प० ३३८

४ वही (जामी) प० ४००

"मैं कूबते जिस्मो कूबते जानस्त मरा ।

मैं काशिके असरारे निहानस्त मरा ॥

दीगर तल्वे दीनवो उक्वा न कुनम ।

यक जुरबा पुर अख हर दो जहाँ नस्त मरा ॥"^१

अतः कहा जा सकता है कि "सूफियों के रति में माधुर्य के साथ साथ मादक भाव भी रहता है, परन्तु उसमें निहित वासनाओं को पवित्र वासना ही कहना उचित है क्योंकि ईश्वरीय रति का ज्ञान" नित्य और गतिप्रद होता है।"^२

उपयुक्त पक्तियों में कहा जा चुका है कि ईश्वर से प्रेम करना, उसकी प्रेमानुभूति द्वारा उसका साक्षात्कार करना और उसकी सत्ता में अपनी सत्ता का विलयन ही सूफी साधना का चरमोद्देश्य है। साधक की उत्कट प्रेमानुभूति अनिवार्य होती है। उसकी अभिव्यक्ति अति कठिन है। यही कारण है कि सूफी कवि एवं साधक रूप की प्रतीकों का आश्रय लेते हैं। सनाई, अस्तार, रूपी निजामी, जामी आदि सूफी कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों, रूपकों, संकेतों और तर्कों का आश्रय लिया है।

सूफी कवियों की यह स्पष्ट घोषणा है कि इस्क मजाजी इस्क हकीकी का सोपान है और इसी के द्वारा मानव खुदी का समाप्त कर खुदी बन जाता है। सूफियों के प्रेमभाव का उदय सबसे प्रथम देवदास और देवनासियों में हुआ। कमकाण्डी नवियों के घोर विरोध के कारण उसको परमप्रेम की उपाधि प्राप्त हुई। सूफी साधकों को अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। प्रमोदसूत मसूर को अनअल हक कहने के अपराध में सूली पर चढ़ाया गया। राविया को जीवन भर दुःख के सागर का सतरण करना पड़ा। इस प्रकार अनेक प्रत्यक्षों का प्रत्याख्यान करते हुए प्रमपरि के ये सच्चे साधक अपने प्रेम-पथ पर प्रगतिमान रहे। ईरान, अरब, भारत आदि देशों में इस साधना का प्रचार और प्रसार हुआ। आठवीं नवीं शताब्दी में इसी प्रेम साधना ने इस्लाम धर्म के अतगत सूफी प्रेम भावना का रूप ग्रहण किया। राविया से अल गज्जाली के समय तक गविच्छिन्न रूप से इस्लाम के साथ ही प्रेम या साधन भाव की सूफी साधना भा चलता रही। सूफियों की साधना का मूल मन्त्र है 'प्रेम। सूफी

१ ईरान के सूफी कवि (उमर खय्याम) पृ० ५१

२ डा० निवसहाय पाठक मलिक मुहम्मद जायसी और उनके काव्य

साधक परम प्रेममय ईश्वर की जिज्ञा (नामस्मरण) एवं फिर्क (ध्यान) में दिवाने बने रहते हैं और सासारिक सभी ऐश्वर्य को वे प्रेम-रूप की मुहब्बत में पाते हैं । वे प्रत्येक कण में प्रियतम का जलवा देखते हैं—

‘वेहि जावी यह कि हर जरें मैं जलवा आशिकार ।

फिर भी पर्दा यह कि सूरत आज तक देखी नहीं ।’

वस्तुतः सूफी साधकों का ध्यान लम्बे यह है कि सृष्टि के कण कण में प्रियतम का जलवा देखना और उससे प्रेम विरह में तरुण प्रलयन का आनन्द उठाना साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त करना और अन्ततोगत्वा चिर मिलन का आनन्द प्राप्त करना ।

इससे स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम जब उच्च पवित्र और मापक भावभूमि पर पहुँच जाता है तब वह ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है । भारतवर्ष का सूफी काव्य भी इसी प्रकार की विचारधारा से पूर्णरूपेण प्रभावित है । भारतीय सूफी कवि कुतुबन मक़न, जायसी आदि ने लौकिक प्रेम के व्याज पारलौकिक प्रेम का वर्णन किया है ।

भारत में सूफी मत का प्रवेश और प्रेम-काव्यों का प्रारम्भ

भारत में सूफी धर्म का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ । यह धर्म चार सम्प्रदायों के रूप में आया । जो समय समय पर देश में प्रचलित हुए । इन सम्प्रदायों से प्रभावित प्रेम-काव्य का परिचय चारण काल से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है । जिस समय मुल्ला दाऊद ने ‘बंदायन’ की रचना की थी । यह समय अलाउद्दीन खिलजी का राजत्व काल था । हिन्दू धर्म के प्रति अश्रद्धा होते हुए भी कुछ मुसलमानी हूणों ने हिन्दू प्रेम कथा के भाव विद्यमान थे । ‘बंदायन या बंदावत’ प्रेम-काव्य सन् १३७५ के आसपास की साहित्यिक मनोवृत्ति का परिचय देने में पर्याप्त है ।

धार्मिक काल के प्रेमकाव्य का प्रारम्भ ‘बंदायन या बंदावत’ से ही होता है । यद्यपि इस प्रेम कथा की परम्परा बहुत बाद में प्रारम्भ हुई । सूफी प्रेमकाव्यानों की परम्परा हिन्दी में मुल्ला दाऊद से प्रारम्भ होती है । उनका ‘बंदायन सन् १३८० में लिखा गया ।’

मक़न ने मधुमालती में प्रेम को बहुत स्पष्ट रूप से विवृत करने का

१ डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

पृ० ३०६

२ प० परशुराम चतुर्वेदी सूफी काव्य संग्रह प० ७८

प्रयत्न किया है। सूफी कविया में किसी भी अन्य सूफी कवि ने इतनी पूर्णता के साथ प्रस्तुत नहीं किया है। यह विवर्ति कथा भाग में लेखक ने उस समय उपस्थित की है जब कथा नायक मनोहर कथा की नायिका मधुमालती से पहली बार अप्सराओं की सहायता से साक्षात्कार लाभ करता है। मधुमालती के प्रश्न करने पर बड़े विस्तार के साथ वह प्रेम का इतिहास उसके समक्ष प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि उन दोनों का यह प्रेम चिरंतन और शाश्वत है—उसमें उसकी प्रीति और उसके (विरह जनित) दुःख का सम्बन्ध उसी क्षण से है जिस क्षण से विद्याता ने उसके प्राणों के सृष्टि की वस्तुतः उनके प्रीति के मोर से उसकी मस्तिष्का (शरीर निर्माण के तत्वों) को सानकर ही उसके शरीर की रचना हुई है।

कहै कुवर मुनु प्रेम विचारी । तोहि मोहि प्रीति पु बधि सारी ।
एहि जग जीवन मोहि तोहि लावा । मैं जित व तोर दुखल बैसाहा ।
मैं न आजु तोरे दुखल दुखारी । तोरे दुख सेंड मोहि आवि बिहारी ।
जेहि दिन सिरेउ आस बिधि मोरा । तेहि दिन मोहि दरसिउ दुख तोरा ।
वर कामिनि तोहि प्रीति के नीरु । मोहि माटी मा सानि सरीरु ।

पु व जिनन सेउ जानहुँ तुम्ही प्रीति के नीर ।

माहि माटी बिधि सानिके तो यह सिरेउ सरीर ॥^१

महान के अनुसार आदि घट (शरीर) में जब प्राण भी नहीं आया था, तभी प्रेमिका के विरह दुःख का दशन विद्याता ने प्रेमी को करा दिया था, इसी कारण यह विरह दुःख प्रेमी के लिए उसके प्राणों से भी अधिक प्रिय है और इस दुःख पर वह अपने सहसा सुखों को वारन के लिए प्रस्तुत रहता है। उसके लिए इस दुःख के क्षण में जो आनंद है वह चतुर्गुण के सुखों में भी उसे प्राप्य नहीं।

‘मैं सभ तजि सकरेउ दुख तोरा । मार जितोर तोर जित मोरा ।
प्राण आदिघट होत न आवा । बिधि तार दुख मोरहि तव दरसावा ।
जोरे विकल्पि कही मैं तोही । तोर दुख अधिक देवबिधि मोही ।
मैं सह दुख केरे बलिहारी । सहस सुख एहि दुख पर वारी ।
कोनि जीभि बकतों दुख दाता । दुख के रूप सुखनिधि के दाता ।

एक निमित्त दुख कह नहि पूज चारिउ युग व सवाद ।

बीन बीन मुख बेरखब तेहि दुख के परसाद ॥'^१

उसके अनुसार इस विरह दुख न मनुष्य की सृष्टि के आदि ही में अपना प्राप्त बनाया था जीव ने उसी समय से अपन को जीव करके जाना जिस दिन वह दुख सृष्टि में समाया इसलिए इस दुख पर प्रेमी दोनों जगत्—इह लोक और परलोक—के समस्त सुखों को निसार करने को तयार रहता है क्योंकि यही दुख वह अमृत है जिसने उसे अमरत्व प्रदान किया है प्रेमिका के इसी विरह दुख के कारण प्रेमी का ससार में जन्म ग्रहण करना सकल होता है—

दुख मानुस कर आदि मरा सा । ब्रह्म कवल मह दुख करवासा ।

जेहिदिन तोहि दुख सिमिटि समाना । तहिदिन ते जिउ क जिउ जाना ।

मोहि न आजु उपजेउ दुख तोरा । सोर दुख आदि सधाती मोरा ।

अब लै वही दुख के कावनि । दुइ जग देउ सुख नेउ छावनि ।

मैं आपन द तार दुख तिया । मरिक् अब सो अमृत पिया ।

तोरे दुख मधुमालति मुखदा एक ससार ।

जेहि जिय मोहि सोरे दुख उपजा घनि सो जग जीतार ॥'

मसन के अनुसार प्रेम इसी दुख पर लब्ध होकर उसका साथी बना वह मानव मानस में इसीलिए पलायन किया कि उसमें दुख का निवास था—

'सुनिउ जाहि जिन भिरि उपाई । प्रीति पेखा बिहउ उडाई ।

तीनिहु लोक ढडि क आवा । आयु जोग कहु ठाठ न पावा ।

तब फिरि मोहि पमेउ आई । रहउ लोमाइ न गयउ उडाई ।

तीनि भुवन तब पूछी बाता । कहु तुइवस मानुस घट राता ।

कहेसि दुख मानुस कर आसा । जहाँ दुख तह मार नैवासा ।

जेहि ठा दुख होइ जग भीतर प्रीति होइ बस ताहि ।

प्रीति बात का जान जेहि सरीर दुख नाहि ॥'

मसन कहते हैं कि इस प्रेम का रहस्य यह है कि प्रेमी और प्रेमिका आदि में एक साथ ही होने हैं । इतना ही नहीं, वे वस्तुतः एक होते हैं और तदन

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ९८ मित्र प्रकाशन प्रा० लि० इलाहाबाद (१९६१) ।

२ वही, पृ० ९६ ।

३ वही, पृ० ९७

3858

न्तर दिया हो जाते हैं । अस एक ही जल से दा मिट्टियाँ सानी गयी हो
अथवा एक ही जल दो प्रणालियों में प्रवाहित होने लगा हो, अथवा एक ही
दीपक दो कसों में प्रकाश देने लगा हो, अथवा एक ही जीव दो शरीरों में
संचरित हुआ हो, अथवा एक ही अग्नि दो स्थानों पर प्रज्ज्वलित कर दी गयी
हो, अथवा एक ही प्रासाद के दा द्वार निर्मित किय गये हो—

‘त मैं दुवो सदा सघ वासी । ओ सतत एक नेह नेवासी ।
ओ मैं तुइ दुइ एक सरीरा । दुइ मांटी सानी एक नीरा ।
एक दारो दुइ बहै पनारी । एक दिया दुइ घर उजियारी ।
एक जीव दुइ पट सचारा । एक अग्नि दुइ ठाएँ बारा ।
ऐके हम दुइ क ओनारे । एक मल्लि दुइ किए दुवारे ।
एक जोति रूप पुनि एक एक परान एक देह ।

आपुहि आपु जो देइ कोइ चाहै सेहि कर कोन सनेह ॥’

महान प्रेमी और प्रेमिका को एक-दूसरे से सबदा अविच्छेद्य बताते हैं—

“त जो समुद लहरि मैं तोरी । तै रवि मैं जग किरनि अजोरी ।
मोहि आपुहि जनि जानु निरारा । मैं सरीर तुइ प्रान पियारा ।
मोहि तोहि को पार वेगसाई । एक जोति दुइ भाउ देखाई ।
सम गियान चखु देखेउ हेरी । हम तुम्ह दुहें परिच कब केरी ।
अजह मोहि न चीहेसि वारी । सबरि देखु चित आदि चिहारी ।
अससा फाद पेय कर अहा जोदुहु जिय केर ।

होत आपु मह परिवेसह नर घर जित फेरि ॥”

फलत महान का कहना है कि जब प्रेमी को प्रेमिका का साक्षात्कार हो
जाता है, समस्त सृष्टि उसे उसी से व्याप्त दिखाई देती है । तब प्रेमिका का
रूप उसके लिए रूप मात्र नहीं उस परम रूप का केन्द्र बिन्दु हो जाता है जो
समस्त सृष्टि में व्याप्त है, उस प्रेमिका के रूप के माध्यम से वह उस दिव्य
रूप का साक्षात्कार करता है जो शक्ति और सिव है, जो त्रिभुवन का महा
जीव है, जो नानात्व में अपना विकास करने त्रिभुवन में व्याप्त हुआ है, और
उसका भोग कर रहा है—

अव लहि विनु जिय जीवन सारा । आजु देखि ताहि जीउ समारा ।

देवत खिन पहिचाना तोही । एहै रूप जेइ छदरा मोही ।

इहै रूप तब अहेउ छपाना । इहै रूप अब सिस्ति समाना ।

इहै रूप सकती ओ सीऊ । इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ ।
 इहै रूप परगट बहु भेसा । इहै रूप जगशक नरेसा ।
 इहै रूप त्रिभुवन जग घेरसँ महि पयाल आगास
 सोइ रूप परगट में देखा दुव माघें परगास ॥^१

मसन के अनुसार प्रेमी को फिर यह प्रेमिका रूप ही अपन रूपमात्र की इयत्ता का दशन कराता है—

"इहै रूप परगट बहु रूपा । इहै रूप बहु भाउ अनूपा ।
 इहै रूप सब ननह जोती । इहै रूप सम सायर मोनी ।
 इहै रूप सम फलह वासा । इहै रूप रम भवर वैरासा ।
 इहै रूप ससिहर ओरुरा । इहै रूप जगपुरि अपूरा ।
 इहै रूप अत आदि निदाना । इहै रूप घरि घर सोघियाना ।
 इहै रूप जलघर ओ महिअर भाउ अनेग देखाउ ।
 आपु गवाइ जोरे कोइ देख सो किछु देखै पाउ ॥^२

कहना नहीं होगा कि प्रेम का इतना विविध निरूपण हिंदी सूफी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता है ।

पद्मावत एक प्रेम काव्य है । जायसी ने भी लौकिक प्रेम के व्याज में पार लौकिक प्रेम का वणन किया है ।

जायसी अपनी प्रेम साधना के माध्यम से निराकार प्रभु की आरती उता रते हुए अपना सधस्व उसी में निमग्नित कर देते हैं । पद्मावत में जायसी ने प्रेममाग उसका महत्व प्रेमगरिमा, उसका सौंदर्य उस पथ की बाधा का स्थान-स्थान पर अति रमणीय वणन किया है । जिसका हृदय प्रेम बाणों से पूंजरूपेण विद्ध है वही इसके मम को जान सकता है—

प्रेम घाव दुख जान न कोई ।
 जेहि लाग जान प सोई ॥^३

मसूर ने उचित ही कहा था, ईश्वर से मिलन तभी संभव है जबकि हम कण्ठों के बीच से होकर गुजरें ।^४ प्रेम की व्यवस्था मत्स्य से भी कठिन है

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ९९

२ वही, प० १००

३ जायसी ग्रंथवली स० रामचंद्र गुवल (ना० प्र० स० काशी),
 पृष्ठ ४९

४ A M A Shrivastava, Outline of Islamic Culture, P 350

‘कठिन मरन ते प्रेम व्यवस्था’ । क्रांतिदर्शी कबीरदास पर भी सूफियों के प्रेमभाव का पूण रूपेण प्रभाव पड़ा है । उनके प्रेम के आदर्श शूर हैं । उनके अनुसार प्रेम पथ पर चलना अतिधारा पर चलना है । यह कोई खाला के घर का पथ महा है जब जो मे आया चल गिये । इसमे प्रवेग प्राप्पय शीश (अहभाव) को समर्पित करना पड़ता है—

‘सीस उतारे भुइ घर तापर राख पांव
दास कबीरा यो कहै ऐसा होय त आब ॥’
‘सीस उतारे भुई घरै सो पठे घर माहि ।’

जायसी न भी प्रेमपथ पर चलने की बात को कुछ इसी प्रकार कहा है

“ज्ञान दिस्टि सो जाय पहुँचा । प्रेम अदिस्ट गगन ते ऊँचा ।

धुव ते ऊँच प्रम धुव ऊआ । सिरदइ पांव देइ सोछूआ ॥”

प्रेम को खाला का सदन समझने वालों को कबीर ने सावधान किया था । जायसी ने भी कहा है कि वहाँ पहुँचने के लिए शिर काट कर उस पर पैर रखना पड़ेगा । ‘करव पिरीत कठिन है काजा प्रेम के पवत पर वही चढ़ सकता है, जो शिर (अभिमान या अहभाव) देकर चढ़ना चाहे । उस प्रेमपथ पर काम, क्रोध आदि बटमारी करते हैं । वह प्रेम पीर ‘प्रबोध’ में प्रवर्द्धित होता है ।

“उपजो प्रेम पीर जेहि आइ ।

परबोधत होई अधिक सो आई ॥”

अल फराबी का मत है कि ईश्वर स्वयमय प्रेम है । सृष्टि रचना का मूल प्रम है । सृष्टि की इकाइयाँ प्रेम के सहारे प्रम के महास्रोत में जो पूण और सर्वोत्तम हैं निमज्जित हो जान के लिए पूणरूपेण जूड़ी हुई हैं ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूफी साधना में प्रेम का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । प्रेम ही कम है और प्रेम ही धम है । प्रेम ही पथ है और परमात्मा भी प्रेममय ही है । इसी प्रेम से हिंदी सूफी काव्य पोषित एवं सम्बद्धित है । हिंदी सूफी काव्य की प्रत्येक कथा का मूलधार प्रेम ही है । इसका बीज और अंत प्रेम की ही विजय है । फारसी व सभी कवियां न अपन काव्य में प्रेम का अधिक महत्व प्रदान किया है ।

१ जायसी प्रभावली स० रामचंद्र शुक्ल पृ० ५०

२ वही, प० ७१

३ A. M. A. Shushitery, Outline of Islamic Culture, P. 211

मानो प्रेम के अतिरिक्त वे कुछ जानते ही नहीं हैं । प्रमाणस्वरूप पूर्वोक्तलिखित
रूमी, जामी, अरु मज्जाली, अतारादि के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।
जायसी ने भी पद्यावत में लिखा है—

मानुष पेम भयउ बनुठी । नाहित बाह छारि भरि मूठी ।

विक्रम धसा प्रेम के वारा । सपनावति बहु मयउ पतारा ।

मधूमाछ मुगधावति लागा । मगनपूर होइगा वरामा ॥”

जायसी ने ‘पद्मावत’ में ‘प्रमपीर’ की विपद और प्राजल अभि यजना
की है ।

जायसी की प्रेम-पद्धति तात्त्विक-मीमांसा

(क) जायसी का प्रेमादश

प्रेम मानव जीवन की दिव्यतम विभूति है। मानवीय चेतना के स्फुरण के साथ ही प्रेम का आविर्भाव मा'य है। सूफी साधकों ने प्रेम को ईश्वर का रूप स्वीकार किया है। जायसी 'प्रेम' के मर्मी कवि हैं। उन्होंने प्रेम का अत्यन्त ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया है। पचावत महाकाव्य में अनेक स्थलों पर उन्होंने प्रेम के आदर्श को मूर्त करने की चेष्टा की है। प्रेम गगन से ऊँचा है। प्रेम का ध्रुव आकाश स्थिति ध्रुव से भी ऊपर-उदय होता है।^१ जो दुःख और वियोग सहने के लिए तत्पर होता है, गिर देने के लिए सज्ज होता है वही प्रेम का अधिकारी है। इस पथ पर योगी, यती तपस्वी और सयासी ही चल सकते हैं।^२ प्रेम को विधि ने कठिन पहाड़ जसा निर्मित किया है। जो सिर देकर चढ़ना चाहता है, वही चढ़ सकता है। प्रेम-पथ पर चलना गूली पर चलने के समान है। इस पर कोई पक्का चोर या मशूर ही चढ़ सकता है।^३ प्रेम के फंदे में एकबार जो जाता है वह इससे मुक्त नहीं हो

१ 'ज्ञान दिष्टि सो जाइ पहुँचा। पेय अदिस्ट गगन तें ऊँचा ॥

ध्रुव ते ऊँच पेय ध्रुव ऊँचा। सिर देइ पाव देइ सो छुआ ॥

—जायसी ब्रजवाली स० आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५०।

२ 'ओहि पथ जाइ जो होई उगासी। जोगी, जती तपी सयासी ॥

—वही, पृ० ५०।

३ "प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो प चढ़ जो सिर सों चढ़ा।

पथ सूटि कै उठा अकूर। चोर चढ़ की चढ़ मसूर ॥

—वही, पृ० ५१।

पाता ।^१ जो सच्चे मन और दृढ़ निश्चय के साथ प्रेम का खेल खेलता है वह दोनों लोको को सफल बना लेता है । प्रेम का लघु दुःख के भीतर सन्निहित है । जो इसे चख लेता है, वह अमर हो जाता है । जो प्रेम पथ पर अग्रसर नहीं होता उसका पथी पर आना व्यर्थ है ।^२ जो सच्चा प्रेम करता है, उसने लिए सोना जागना सब बराबर हो जाता है ।^३ वह सबत्र अपने प्रिय को ही देखता है । मनुष्य 'प्रेम' के बल पर स्वर्गीय बन जाता है । जब हृदय में प्रेम का दीप जलता है तब उससे उत्पन्न ज्योति से हृदय निरमल हो जाता है । जो माग असूफ-अघेरे से भरा होता है उसमें प्रकाश हो जाता है और वह जाना बूझा हो जाता है ।^४ सच्चा प्रेम वही है जो प्राणों के साथ जाता है । प्रेम का भार उठाने पर मन में सोच नहीं होता चाह वह माग में भला हो या बुरा । प्रेम पवत का भार जब उठा लिया जाता है तो वह किसी भी प्रकार छूटता नहीं है ।^५ वह तो हृदय में बसा रहता है । प्रेम पवत के सदृश है जिसकी पीठ पर इसका भार बंध जाता है वह फिर उससे कभी मुक्त नहीं हो पाता । इस प्रेम से अनुप्राणित साधक को प्रेम के अनिरिक्त ससार में कुछ भी मधुर नहीं लगता है । रानमेन तोते रूपी गुरु के मुख से पद्मावती का रूप वगन सुनकर यह अनुभव करने लगता है कि तीन लाख और चौदह लख

१ 'पेम फाद जो परा न छूटा । जीउ दी ह प फाद न टूटा ॥'

—जायसी ग्रन्थावली स० आ० रामचन्द्र शुक्ल प० ३९ ।

२ 'भलेहि पेम है कठिन दुहेला । दुइ जग सरा पेम जेइ खेला ।

दुख भीतर जो पेम मधु राखा । जग नहि मरन सहे जो चाखा ॥

जो नहि सीस पेम पथ लावा । सो प्रियमी मह काहे क आवा ?"

—वही, प० ४० ।

३ 'जेहि के हिये पेम रग आमा । का तेहि भूख नीद बिसरामा ॥'

—वही प० ५८ ।

४ 'लेंसा हिये प्रेम कर दीया । उठी जोति भा निरमल होया ।

मारग हुत अधियार जो मुझा । भा अजोर, सब जाना बूझा ।

—वही प० ७ ।

५ 'का सो प्रीतितन माह बिलाई ? सोइ प्रीति जिउ साथ जो जाई ।

प्रीति मार ल हिये न सोचू । ओहि पथ मल होइ कि पोचू ॥

प्रीति-पहार मार जो काधा । सो कस छुट, लाइ जिउ बाधा ॥

—वही, प० २२ ।

में प्रेम के अनिरिक्त और कुछ सुन्दर नहीं है ।^१ आदश एवं पवित्र प्रेम साधना बड़ी कठिन है । इसमें आत्म समर्पण करने से ही आनन्द की प्राप्ति होती है । वास्तव में प्रेम भाव अनिवार्य है । इसके माधुर्य को वही जानता है जिसने उस भाग का अनुसरण किया है । जिसने यह भाग नहीं देखा, वह इसके वशिष्ठ्य को नहीं जानता ।^२ जो प्रेम सुधा से सिक्त वचन सुनता है, वह मदोन्मत्त होकर चक्कर खाकर गिर जाता है ।^३ प्रेम के भाव का दुःख कोई नहीं जानता । जिसे घाव लगता है वही जानता है । वह प्रेम के अपार समुद्र में गिर जाता है और लहर पर लहर आने से बेसुध हो जाता है । उसका विरह उसे भवर की तरह घुमाता है । जिसके कारण क्षण क्षण में उसका जीव हिलोरे लेता है फिर क्षण भर में वीरा कर विश्वास छोड़ने लगता है । उसका मुख क्षण में श्वेत और क्षण में पीला हो जाता है । क्षण में उसे चेत होता है और क्षण में अचेत हो जाता है । प्रेम की स्थिति मरने से भी कठिन होती है क्योंकि उसमें न प्राण जीता है और न ही मस्य होती है ।^४ प्रेम के पथ में जाने वाला दिन और रात नहीं देखता । जब आनन्दयुक्त होता है तभी उस भाग की ओर देखने लगता है । जो प्रेम में पड़ा होता है उसका शरीर मांस रहित अत्यन्त क्षीण हो जाता है । उसके शरीर में न रक्त हाता है, और न नेत्रों में आसू । पांडित भी प्रेम बिह्वल होकर भूला रहता है । प्राण जेते

१ सीनि लोक चौदह सण्ड, सब परे मोहि सृणि ।

पेय छाडि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि ॥'

जा० ग्र०, पृ० १९ ।

२ वही, पृ० ४० ।

३ 'भरे प्रेम रस बोल बोला । सुने सो भाति घूमि के डोला ॥

—वही, पृ० ४४ ।

४ 'प्रेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लगि जान प सोइ ।

परा सो प्रेम समुद्र अपारा । लहरहि लहर होइ विमभारा ॥

विरह भवर होइ भावरि देइ । खिन खिन जीव हिलोरहि तोई ॥

खिनहि निसास बूझि जिउ जाई । खिनहि उठ निससे बोरार्इ ॥

खिनहि पति खिन होइ मुख सेता । खिनहि चेत खिन होइ अचेता ॥

कठिन भरन ते प्रेम व्यवस्था । न जिज जिवन न दसई अवस्था ॥

—स० डा० वामुदेवगारण अग्रवाल पचावत

पृ० १३४-३५ ।

समय मृत्यु नहीं पूछती ।' जिसमें प्रेम होता है उसे प्राणा का मोह नहीं होता । जो पहले गिर देकर इस माग में पड़ रहता है, वह पहले ही मर जाता है । मृत्यु उसका कुछ नहीं गिनाई सकती है ।' जिसने प्रेम का समुद्र देखा है वह इस समुद्र को बूँद की तरह समझता है ।' प्रेम का समुद्र अगाध है । वहाँ बार-बार नहीं है, न बाढ़ है जो इस समुद्र में पड़ता है वह जीव को गवा कर हस बन कर पार पहुँचता है ।' वह मनुष्य धन्य है जो प्रेम के माग में चलते हैं । उन्होंने ही वह उत्तम स्वर्ग प्राप्त किया है । जहाँ मृत्यु नहीं और सदा सुख का निवास है । जो प्रेम के माग में पार पहुँच जाता है, वह पुन लौटकर इस मिट्टी में नहीं मिलता है ।' दधि का मागर देखते ही मन दग्ध हो सकता है परन्तु जो प्रेम का लुभामा हुआ है वह दाह सह जाता है । वह जीव धन्य है जो प्रेम से दग्ध हुआ है । जिसके हृदय में प्रेम है उसके लिए आग चंदन की भाँति गीतल होता है पर जो प्रेमरहित है वह आग से मयभीत होकर भागता है । जो कोई प्रेम की आग में जलता है उसका दुःख व्यर्थ नहीं

१ प्रेम पय दिन घरी न देखा । तब देखे जब होइ सरेखा ।

जेहितन पम कहाँ तेहि मामू । क्या न रक्त नन नहि आसू ॥

पड़ित मूल न जान खालू । जीउ लेत दिन पूछ न कालू ॥'

—जा० अष्टावली प० ५३ ।

२ प जेहि प्रेम कहा तेहि जीऊ

जो पहिले सिर द पगुघरई । मूए करे भीचु का करई ॥

—वही पृ० ५९ ।

३ "ओ जेइ समुद्र पेय कर देखा । तेहि एहि समुद्र बूँद करि लेखा ॥'

—वही, प० ६० ।

४ प्रेम समुद्र अस अवगाहा । जहाँ न बार पार नहि थाहा ।

जौ वह समुद्र काह एहिपरे । जौ अवगाहा हस होइतिरे ॥

—डा० बासुदेव शरण अग्रवाल 'पदमावत' प० १६३ ।

५ चढ़े बेगि और बोहित पेले । घनि ओइ पुरुष पेय पय खेले ॥

तिह पावा उत्तिम कबिलासू । जहाँ न भीचु सदा सुख वासू ॥

प्रेम पय जो पहुँचे पारा । बहुरि न आइ मिल एहि छारा ॥'

—पदमावत डा० या० १० अग्रवाल

प० १६६-६७ ।

जाता ।^१ प्रेम मद से दीपक प्रज्ज्वलित होता है । जब तक पतिगा बन कर उस दीपक पर जल न जाय तब तक प्रेम मद का आस्वादन नहीं किया जा सकता । मनुष्य प्रेम के द्वारा स्वर्ग के योग्य बनता है नहीं तो उसमें है ही क्या ? केवल एक झूठी राख है । प्रेम में ही विरह और रस दोनों हैं जैसे मोम के छत्ते में गहद का अमृत और वर दोनों रहते हैं । सत्यहीन व्यक्ति दौड़ घूँप कर मर भी जाय तो क्या ? पर जो सत्य स्वरूप का व्यवहार करता है उसे चठे ही लाभ मिलता है ।^२ मछली पृथ्वी पर जल में निवास करती है । आम वृक्ष पर आकाश में फलता है पर दोनों में सच्ची प्रीति है तो अतः तीनों ही एक साथ मिल जाते हैं । ठीक इसी प्रकार प्रेम के क्षेत्र में मानव भी प्रेम की सच्चाई होने पर अतः मिल जाते हैं ।^३ प्रेम की चिनगारी का ताम सुनकर पृथ्वी और आकाश भी डरते हैं । धर है वह हृदय जिसमें यह अग्नि समाहित रहती है ।^४ वास्तव में प्रेम के रहस्य को वह नहीं जान सकता है जो उसके लिए आत्मबलिदान नहीं करता । इस प्रेम का पथ लटका है । जो बड़ी कामनाएँ रखता है वह पाताल में गिरता है किन्तु जो उसमें प्रवेश

१ 'दधि समुद देखत मन उहा । पेम कलुबुध दगध पै सहा ॥

पेम सों दाया धनि वह जीऊ । दही माहि मयि काढे घीऊ ॥

+

+

+

जेहि जिय पेम चदन तेहि आगी । पेम बिहून फिरहि उरि भागी ।

पेम कि आगि जर औ कोई । ताकर दुख न अविरथा होई ॥"^५

—वही पृ० १७२-७३ ।

२ जायसी प्रभावली पृ० ५१ ।

३ 'मानुस पेय भखत बकुठी । माहित काह छार एक मूठी ॥

+

+

+

निसत घाइ केय जी मर सो काहा । सत जी कर बसइ होइ लाहा ॥

—पदमावत वही, पृ० १८९ ।

४ बस मीन जल घरती अवा विरित अवास ।

जौ रे पिरिति दुहन मह अत होहि एक पास ॥'

—पदमावत वा० श० अग्रवाल, पृ० २०६ ।

५ 'चिनगी प्रेम के सुनि महि गगन हराइ ।

धनि विरहो औ धनि हिया तठ अस अग्नि समाइ ॥'

—जायसी प्रभावली पृ० ८८

कर आत्म बलिदान करता है और निष्काम साधना करता है, वह सफल होता है ।^१ जिसके हृदय में प्रेम का अकुर होता है, वह पानी की भाँति तरल और शीतल रहता है । वह जिस रंग में मिलता है उसी रंग का हा जाता है । जो प्रेम को जीत लेता है वह सिद्धो की भाँति तप करके मरता नहीं है ।^२ जो प्रेम के पैरो पर अपना सिर दे लेता है वह प्रीति को निवाहने के लिए सन्नद्ध रहता ।^३ प्रेम सुरा जिसके हृदय में होती है उसके लिए साधारण महुआ की मदिरा का कोई मूल्य नहीं होता है । इस प्रेम सुरा का पान करने पर जीवन मरण का भय नहीं रहता है ।^४ जो व्यक्ति प्रेम की बेल में उलझ जाता है तो वह उलझन के बाद मर कर भी नहीं छूटता है । प्रीति की बेल गरीर को दग्ध किया करती है । उसमें जब पल्लव फूलते हैं तब सुखानुभव हाता है पर उससे विकास को प्राप्त हो जाने पर दुख बन जाता है । प्रीति की बेल के साथ ही अपार दुख भी उत्पन्न होना है जिसकी ज्वाला स्वयं से पाताल तक जलती है । प्रीति की अमर बेल दिनानुदिन बढ़ती ही रहती है । कभी भी क्षीण नहीं होती । प्रीति की अमरबेल एकाकी ही बढ़कर छाती है फिर दूसरी बेल वहाँ नहीं फलने पाती है । जब कोई प्रीति की बेल में उलझता है तब उसकी छाह में उसे सुखानुभव हाता है ।^५ जो एक बार प्रेम सुरा का पान कर लेता है उसके हृदय में मरने जीने का डर नहीं रहता है । वह पीता हुआ

१ उलटा पच्य प्रेम ने वारा । बढ सरग, जो पर पतारा ॥

—वही पृ० ९८ ।

२ 'जहि जिय प्रेम पानि भा सोई । जेहि रंग मिले तेहि रंग होई ।

जीव जाइ प्रेम सिउ जूझा । कन पपि मरहि सिद्ध जिह बूझा ।'

—पद्मावत वा० श० अग्रवाल, पृ० २७८ ।

३ वही, पृ० २७८ ।

४ 'प्रेम सुरा जेहि के हिय माहीं । कित बढे महुआ के छाहा ।'

—जायसी श्रयावली पृ० ६५ ।

५ "प्रीति बेलि जनि अल्ल कोई । असझें भुए न छटै सोई ॥

प्रीति बेलि ऐसैं तनु डाटा । पलुहत सुख वाढत दुख वाढा ॥

प्रीति बेलि सग विरह अपारा । सरग पतार जर तेहि शारा ॥

प्रीति बेलि केइ अम्मर वोई । दिन दिन भाढ खीन न होई ॥

प्रीति अकेलि बेलि बढि छावा । दोसरि बेलि न पसर पावा ॥

—पद्मावत वा० श० अग्रवाल पृ० २९० ।

प्रधाता नहीं है। वह बारम्बार पीने की ईहा पक्त करता है। बार बार बेसुध हो जाता है। जिसे एकबार प्रेम मधु का लाम हो जाता है, वह सवस्व बहा देता है और कहता है “भले हो सवस्व चला जाय पीना न छूटे।” वह अहनिश प्रेम रस में डूबा रहता है, न लाम दसता है और न हानि। जब प्रातः काल होता है तब उसका शरीर हरा भरा हो जाता है और पीने के लिए मया उत्साह आ जाता है। मानो नद्या उत्तरने पर खुमारी की दशा में उसे क्षीतल जल मिल गया हो।^१ इस प्रेम का माधुर्य इसका विरह ही है। विरह प्रेम का चरम सौन्दर्य है। प्रेम में विरह का रस हाने के कारण उसमें विचित्र भावकता रहती है।^२ विरह वास्तव में प्रेम का मापदण्ड है जिसका प्रेम जितना तीव्रतम होता है, उसकी विरहानुभूति उतनी ही गहरी होती है। ‘कठिन प्रेम विरहा दुख भारी’ से यह स्पष्ट है। प्रेम का मूल त्याग है। जो प्रेम भाग में प्रवृत्त होता है उसे प्राणों की बलि तक चढानी पड़ती है। वास्तव में प्रेम के रहस्य को वह नहीं जान सकता जो उसके लिए आत्म बलिदान नहीं कराता।^३ जब तक प्रेमी पिय से पूर्ण एक्य लाभ कर भुग की भांति तद्रूप नहीं हो जाता और अपने अस्तित्व को प्रेम पात्र में विलय नहीं कर देता तब तक उसका हृदय स सासारिक भय नहीं निकलते हैं।^४ निश्चय ही प्रेम का पीर में जागरूकता होती है। प्रेम की कसौटी पर कस जाने पर मानव कचन के सद्गुण खरा हो जाता है।^५

(ख) प्रेमोदय का आधार

पुरुष और स्त्री के बीच प्रेम का उदय एक मानसिक प्रक्रिया है। यह प्रेमोदय क्या और किस प्रकार होता है? यह निर्धारित करना कठिन है। प्रेमोदय का कारण बहुत कुछ व्यक्तिगत होता है। प्रेम का आधार सौम्य है किन्तु सौन्दर्य बहुत कुछ द्रष्टा का व्यक्तिगत रुचि से सम्बद्ध है। फिर भी प्रमात्मानों में इसके उदय के जो कारण और आधार दिये गये हैं, उनका विवेचन किसी निश्चित परिणाम की ओर ले जा सकता है।

१ डॉ० वामुदेव गरण अग्रवाल पद्मावत पृ० ३८५।

२ आ० रामचन्द्र शुक्ल आमसी-ग्रन्थावली पृ० ७१।

३ वही, पृ० ५८

४ वही, पृ० ७३

५ ‘ना वह करा भुग क होई। ना वह आपु मरा जित सोई॥’

—वही, पृ० ९९।

६ वही, पृ० ९९।

प्रेम (रति) भाव की तीन अवस्थाएँ होती हैं, उदय साधनावस्था, और सिद्धि । आलम्बन के प्रथम परिचय रूप गुण श्रवण धिय दशन और साहचय स रतिभाव का उदय होता है । उसे पाने, चिरस्थायी साहचय स्थापित करने का प्रयत्न और वियोग साधनावस्था है । मिलन और सम्भोग रति की सिद्धावस्था है । उदयावस्था को सम्भवतः साधनावस्था में ही समाविष्ट कर लिया गया है । पर सूफी काव्य में प्रेम की उन्मत्तावस्था का जिस विस्तार से वर्णन हुआ है, उसे जो गम्भीरता और गरिमा दी गयी है उसे देखकर उदयावस्था को पथक मान लेना पड़ता है ।

सूफी काव्य में प्रेम का उदय साक्षात् परिचय, चित्रदगन, स्वप्न दगन, रूप गुण श्रवण और स्वत, अकारण या सरकार प्रेरणा से भी होता है । मधु मालती' (मस्तन)' में साक्षात् दगन और परिचय तथा पद्मावत (जायसी)' में गुण श्रवण से प्रेम का उन्मत्त होना है । पद्मावत' में नायिका पद्मावती के हृदय में स्वत ही रतिभाव जागृत हो जाता है और वियोग में 'याकुल' होन लगती है । इस अकारण या स्वत रतिभावोदय की अस्वाभाविकता का निराकरण सूफी साहित्य में है । प्रिय युग-युग से, जन्म-जन्मांतर स प्रियतमा के विरह में छट पटाता रहता है । प्रियतमा भी अपने प्रिय के लिए 'याकुल' है । जायसी के पास इसका समाधान कोई है तो वह रत्नसन के योग का अलङ्कार प्रभाव—

'पद्मावति तेहि लोग सजागा । परी प्रेम बस गहे वियोगा' १

स्वप्न दशन स प्रेमोदय का समाधान भी परमार्थमा और आत्मा के अनादि अनन्त प्रेम की स्वीकृति में है । चित्र दशन या गुण श्रवण द्वारा जो प्रेम का उदय होता है, वह लोक-व्यवहार और अनुभव सिद्ध है । ऐसा मानना कि केवल साहचय से ही प्रेम का उदय और विकास होता है, भुक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है । साहचय से प्रेम के दृढ़ होने की सम्भावना की जा सकती है । उद्वाह चर्चा चलने पर पुरोहित ही नहीं प्रत्युत माता पिता और मध्यस्थ लड़के के रूप गुण का मुक्त कंठ से प्रशंसा करते और एक-दूसरे को परस्पर आकर्षित करते हैं । इसका प्रयोग ही एक-दूसरे में प्रेमाकुर उगाना है ।

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ३४-४२

२ "मुनतहि राजा गा मुरछाई । जानी लहर सुरज क आई ॥"

—जायसी-पद्मावली, प० ४९

३ वही पृ० ७३

हरिवंश पुराण^१ में गुधि मुक्ती नाम्नी हँसी के द्वारा प्रद्युम्न जी के रूप-
गुण का श्रवण करके प्रभावती उनको पति रूप में प्राप्त करने के लिए कामना
करने लगती है ।^२ यहाँ पर भी रूप गुण श्रवण से ही प्रेमोदय हुआ है ।

शकुन्तला अनुपमा सुन्दरी है ।^३ राजा उसके सौन्दर्य को देखकर मग्न मुग्ध
हो जाता है ।^४ उसका सौन्दर्य नैसर्गिक है । उसके अंगों में असाधारण लावण्य
है ।^५ उसके यौवन के चिह्न प्रकट हो रहे हैं ।^६ इस प्रकार कालीदास के
शकुन्तला और दुष्यंत के मध्य प्रेम का उदय प्रत्यक्ष दृश्य से ही हुआ है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम चार प्रकार का माना है—

(१) विवाह के बाद जीवन-संघर्ष में जिसका उत्कर्ष दिखाया
जाता है,

१ "त्रलोक्ये यस्य रूपेण सदसो न कुलेन वा ।
गुणर्वा चाह सर्वाङ्ग शौर्येणाप्यति वा शुभे ॥
देवेषु देव सुश्रोणि दानवेषु च दानव ।
मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्य स महाबल ॥

× × ×

यायापुणापूषु श्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि ।
एष्टयास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्नो सव एव ते ॥

—हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अ० ९४, श्लोक २०-२६, पंडित
पुस्तकालय, काशी ।

२ 'प्रद्युम्नस्यादयथा भर्ता स मे वष्टि कुलोद्भव ।
अत्यंत वीरौ दैत्यानामुदवेजन करो हरि ॥

+ + +

हेतु स नास्ति स्यात्तेन यथा मम समागम ।
दासी तवाह सख्यर्हं दूत्य त्वाच्च विसर्जये ॥

—वही श्लोक ३४-३७

३ "मानुषीषु यथा वा स्यादस्य रूपस्य सम्भव ।
न श्रमात्तरन् व्योतिरुदति वसुधातलात् ॥

—अभिमानाशकुन्तलम् (प्र० अ०), अ० कपिलदेव द्विवेदी, प० ७८

४ 'इदं किला व्याज मनोहर वपु'—वही, पृ० ४६

५ "अधर विसलय राग"—वही, पृ० ५४

६ "अत्र पयोधर विस्तार पितुं"—वही, पृ० ४९

७ आयसी प्रभावती, ग्रन्थिका । पृ० २७

- (२) विवाह के पूर्व, जो जीवन क्षेत्र में बही भेंट होने से उदित होता है और जिसका परिणाम विवाह होता है
- (३) राजप्रसाद, वाटिका जल विहार आदि में जो रंग रहस्य के रूप में प्रकट होता है, तथा
- (४) गुण-श्रवण चित्र दशन, स्वप्न दशन आदि के द्वारा जिसका उद्गम होता है । नायक या नायिका जिसमें प्रयत्नवान दिखाय जाते हैं ।

तीसरे प्रकार की चाहे तो दूसरे या चौथे प्रकार में समविष्ट किया जा सकता है । वास्तव में तीसरे प्रकार का प्रेम शृंगार या भोग विलास चित्रण है इसे तो किसी भी प्रेम के भीतर समाहित किया जा सकता है ।

सूफियों का प्रेम दूसरे और चौथे प्रकार का समन्वित रूप है यहाँ यह बात ध्यात-य है कि 'युसुफ जुलेखा' के सिवा संभव सूफी काव्य में स्वकीया प्रेम का निरूपण है । 'युसुफ जुलेखा' में ही परकीया प्रेम की स्थापना की गयी है । जुलेखा ने अपने पति को बभी गारीरिक या मानसिक समर्पण नहीं किया—वह पवित्र ही बनी रही । प्रयत्न भी जुलेखा के सिवा सभी काव्यों में नायक का ओर से ही है ।^१

प्रेम की उदयावस्था का उत्कर्ष पूवराग में होता है । पूवराग तीन रूपों में उदित होते दिखाया गया है । चित्र-दशन गुण श्रवण और स्वप्न दशन से । स्वप्नदशन द्वारा उदभूत पूवराग पहा दोनो प्रकारों की अपेक्षा कम स्वाभाविक है । पहल दोनो प्रकारों को मनोवज्ञानिक, स्वाभाविक और सम्भाव्य कहा जा सकता है । पूवराग के भी दो पक्ष हैं एक मिलन सुख की त भयता प्रेम की परिपक्वता, चिर साहचर्य की स्वीकृति समर्पण आदि और दूसरा विरह । चित्रवली से मुजना और मधुमालती से मनोहर का मिलन होता है । वे परस्पर मुग्ध हो जाते हैं । चिरतन प्रेम को पहचान लते हैं, चिर साहचर्य का सकल्प करते हैं और इतने प्रेमाकुल हो जाते हैं—

‘प्रेम भाव दुओ जो भरेऊ । परम आनंद चित्त में घरेऊ ॥

+ + +

नन सोहागिनि बिस बस, अघर अजित वासु ।

नन कटाच्छ जो मार, बिहसि जियाव तासु ॥’^२

१ हिन्दी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल पृ० ५११

२ मधुमालती स० डा० माता प्रसाद गुप्त पृ० ४१

मालम्बन के मुग्धवारी सौन्दर्य रस का एव घूट पीते ही आश्रय मुग्ध-बुध खो बैठता है। भावलीनता और विस्मरण की अतल गहराइयों में निमग्न हो जाता है। देवजानी राज प्रासाद के गवाल से माला पिरोती हुई ज्ञानदीप को देखती है। उसके रूप के ध्यान में वह इतनी निमग्न हो जाती है कि अपनी जगली को ही पूँठ के साथ बंध डालती है—उस पता तक नहीं चलता। चित्र दशन गुण श्रवण, स्वप्न दशन में भी नायक पर जम प्रेम का नगा सवार हो जाता है। पद्मावती के रूप गुण श्रवण करन पर रत्नसन की यही अवस्था होती है—

‘सुनतहि राजा गा मुरपाई। जानी लहरि सुरज ब आई ॥

खिनहि उसास बूडि अउ जाई। खिनहि उठ नितरं बीराई ॥

खिनहि पीत खिन होइ मुख मना। खिनहि चेत खिन होइ अचता ॥”

पूरवराग के उत्थप और परिपक्व हो जाने के बाद प्रेम का प्रयत्न या साधना पक्ष आता है। अपिक्तर नायक राजपाट, धाधरती, सुख ऐश्वर्य को ठुकरा जोगी बन कर निकल पड़ते हैं।^१ प्रेम के प्रयत्न पक्ष को इतना महत्व दिया गया है कि कषलावटी में विवाह हुआ जाने के बाद नायिका का विछोह हो जाता है और नायक योगी बन कर उसकी खोज करता है।^२ नायक को मयकर प्राकृतिक व्यवधान, बाधाओं और प्रकाशों का सामना करना पड़ता है। दुर्गम बन पर्वत और विषट पथों को वह पार करता है। समुद्री सूफानों का सामना करता है। जंगली हाथियों, खेरो और पत्तियों का शिकार होते-होते बचता है। भीषण दंत्यो राक्षसों का बध करके अपनी और अनेक अबलाओं की रक्षा करता है। आक्रांताओं अनाचारियों को परास्त करके वह साध्य की ओर अग्रसर होता है। उसके भाग की बाधाओं प्रलोभन के रूप में उसके सामने आती हैं। वह उन्हें ठुकरा कर अपनी प्रेयसी के प्रति आश्रय प्रेम और मिष्टा का परिचय देता है। यही सधप का पक्ष है।

बिरह का सूफी का य में अत्यधिक महत्व है। गुरु के द्वारा साधक को परम प्रिय परमार्थ का बोध कराना और उसके हृदय में बिरह की चिनगी

१ जायसी प्रयावली पृ० ४९

२ ‘चला मुगुति मागे कह साधि क्या तप जोग ।

सिद्ध होइ पद्मावति जेहि कर हिय विमोग ॥’

—वही, पृ० ५३

३ सूफी कवि और काय डा० सरला गुप्त पृ० ३९८

६४। सूफ़ी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

जलाना ही ज्ञान विरह जाग्रत करना है^१। विरह चिंगारी जब मुलम कर अद्भुत
आग बन जाती है तो साधक विश्व के वण वण को उसी प्रियतम की विरह
ज्वाला में मुलमते हुए पाता है या प्रत्येक पदार्थ को विरह में जलते हुए देखता
है, तो उससे हृदय में वही आग घटक उठती है। घरती आकाश उसीके कटाक्ष
बाणों से घामल है।^२ समस्त जगत उसका अधर पीयूष पान करने के लिए
बताव है।^३ उसके वपोलों के तिल पर गगन स्थिर ध्रुव टकटकी लगाये है।^४
उसके सुपमा पराग पर भीरा बना है कोई सौन्दर्य दीप शिक्षा पर पतगा।^५
देवता तब भी उससे नशील रूप को देखते हुए वेमुग्न हो जाते हैं।^६ विरह ही
प्रेम परीक्षा की सफलता की सनद है। विरह तीन क्षत्रों में क्रियाशील पामा
जाता है, आश्रय, आलम्बन और परिवर्तन। विरह के तीव्र गरल दशान को
आश्रय अपने भावानुल मुकुमार हृदय में धरोहर मानकर पालता है। विरह की
अग्नि में सुसज्ज कर भी वह उस बलज से सटाव रखता है। अपने हृदय को
गलाकर वह खून के आँसू बहाता है। सूफ़ी अपने प्राणा की धूनी जलाता है।
वह वेरना का अनुपम साधक होता है

‘ननहि बली रक्त व धारा। बघा भीजि मयउ रतनारा।
दुहुमि जो भीजि मयउ सब नैर। औ रात तह पखि पखेर ॥

ईगुर भा पहार जो भी जा। प लुहार नहि रोव पसीजा ॥

तहाँ बगोर कोबिला, तिह हिय मया पईठि।

नन रक्त भरि आये तुम फिरि कीह न दीठि॥

१ ‘गुरु विरह चिंगो जो मला। जो सुलगाइ लइ सो बेला।

—जायसी प्रयागली, पृ० ५१

२ ‘बहनी का बरनी इमि बनि। साथे वान जानु दुइ अनी ॥

+

+

+

उह वान ह अस को न मारा ? देखि रहा सगरा ससारा।

गगन नखत जो जाहि न गने। वे सब वान ओहि के हुने ॥”

—बहा, पृ० ४३, दोहा ६

३ वही, पृ० ४४ दोहा ८

४ वहा, पृ० ४५ दोहा ११

५ वही, पृ० ८४ दोहा ८

६ वही, पृ० ८३, दोहा १०

७ जायसी प्र यावली पृ० ९८, दोहा १२

कभी प्रेमी सिसक सिसक कर अपनी बहनिया स ब्यथा की बथा लिखकर भेजता है, कभी हडिडयो की सारंगी बनावर रोम रोम स चीत्कार भरे स्वर अलापता है । कभी सारीर की भस्म बनावर प्रिय पथ भ बिछाता है—

‘मसि नना लिखनी बरनि, रोइ रोइ लिखा अकत्य ।

आखर दहै न कोइ दयुव दी ह परेवा हत्य ॥’^१

जब जब चेतन सभी बियोमी की हृदयवेधक दशा देखकर तडप उठते हैं, तो प्रिय पर उसका प्रभाव क्यों न पड़ेगा । सच्ची साधना ही साध्य द्रवित होता ही है । वह भी साधक के विरह में तडपने लगता है—

जसे बबल सूर के आसा । नीर कण्ठजहि परत पिनासा ॥

बितरा भोग सेज सूख बासा । जहाँ भौर सब तहाँ हुलासा ॥

अगर बदन सुठि दहै सरीर । औ मा अग्नि क्या कर चीर ॥

विरह न आपु समीर मल चीर सिर रुब ।

पिठ पिठ करत गतिदिन जस पविहा मुन मून ॥’^२

रत्नसेन के विरह में पयावती जब ऐसी बहाल हा रहो है तभी उसकी विरह पाती ले हीरामन आ जागा है, वह तुर त अकुला कर प्रियतम की कुशल पूछती है—

‘मल तुम्ह सुआ कीह है फेरा । कहहु कुशल अब पीतम केरा ॥’^३

प्रेम की सबसे बड़ी पहचान है, निज पीछा भूल कर प्रियतम की कुशल कामना करते रहना । साधक की मार्मिक वदना, प्रेम पथ में त्याग, कष्ट सहन अडिग धीरता और जतन आस्था ही साध्य के हृदय में मया उत्पन्न करती है । यह ‘मया’ ही साधक (प्रेमी) और साध्य (प्रियतम) का चिरत्तर आध्यात्मिक सम्बन्ध (प्रेम) स्थापित करती है ।

निगुण कवियों के समान ही सूफिया न भी विरह के प्रतीका का प्रयोग किया है । वहीं विरह को बराग्य^४ कहा गया है, वहीं भवर^५ ईश्वर विरह में

१ जायसी प्रयावली प० ९६

२ वही, प० ९९

३ वही, प० ७९

४ सुनि के धनि जारी अस क्या । तन मा मयन हिय भई मया ॥

—वही, प० ७८

५ वही प० ४९

६ वही, प० ४९

६६ । सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

माधक विरागी, त्यागी, भौतिक सुख विमूढ हो जाता है। उसकी दशा भवर में पड़े मनुष्य की सी होनी है, विरह के समुद्र में वह कभी डूबता है, कभी उतराता। विरह की आग में जलकर साधक सच्चा सोना बनता है इसीलिए उसे चिगारी^१ और आग^२ बताया गया है। विरह बाण^३ लग कर प्रेमी छट पटाता है। विरह का धाव सख्त से कम पीड़ा नहीं पहुँचाता।^४ बियोग वेदना और बेमुधी सप के बिष दशन से कम नहीं है। इसके अतिरिक्त विरह को व्याघ्र^५, हाथी, नेहरी^६, राहु^७ आदि प्रतीक द्वारा भी अभि यक्त किया गया है। 'पद्मावत' बियोग खण्ड^८ में जो यौवन वणन है वह विरह वणन ही है।^९

हिन्दी सूफी प्रेम काव्यों में यद्यपि रति का आधिक्य नायक में ही निस्साया गया है पर नायक की विरह साधना प्रेम पथ के अद्वितीय वृष्टसहन और उसकी दीनहीन दशा का प्रभाव नायिका पर इतना पड़ता है कि नायिका में रतिभाव का उदय इतनी तीव्रता, सघनता और आधिक्य के होता है कि दोनों का प्रेम सम कहा जा सकता है।^{१०} समान प्रेम का यह भाव अनादि है—कही प्रत्यक्ष, कही अप्रत्यक्ष। नायक में सौम्य, शील प्रेम की अन यता के कारण नायिका में जो प्रेम उदित और विकसित होता है उससे वह भी रतिभाव की आश्रय बन जाती है और नायक आलम्बन हो जाता है। विरह साधना के उपरांत दोनों का मिलन परिणय के रूप में होता है। नायिका प्रेम में इतनी

१ 'सुनि के घनि जारी अब क्या। तन मा भयन हिय भई ममा ॥

—वही पृ० ७४

२ वही, पृ० ९६

३ जायसी ग्रंथावली पृ० ९७-९८

४ वही पृ० ७४

५ भधुमालती डॉ० माताप्रसाद मुक्त पृ० ४४, ७४

६ जायसी ग्रंथावली, पृ० ६४

७ वही।

८ वही।

९ वही, पृ० ७५

१० वही पृ० ७४-७५

११ (क) 'बाढ़ि प्राण बठी लेइ हाथा। मर तो मरो जियो एक साया

—वही, पृ० ११३ (ख) वही, पृ० २९

सराबोर हो जाती है कि हृदय में उसे उपस्थित पाती है—न मिलने पर विलक्षण विवशता अनुभव करती है ।^१ तन मन जीवन साजकर सवस्व समर्पण करने के लिए प्रस्तुत करती है—

‘साजन लेइ पठावा, आयसु जाइ त भेंट ।

तन मन जीवन साजि क, देइ चली लइ भेंट ॥’^२

मिलन के लिए जात हुए लज्जा, सकोच, अपरिचय, यौवन घम, प्रेम की अनभिज्ञता आदि के कारण उसका हृदय धक धक करने लगता है ।^३

प्रथम भेंट में मोंदय के सहसा साक्षात्कार से बेताब हो नायक आनन्द सम्मोहित हो जाता है उसे सयोग सुख कामातुरता सौंदर्यानुभूति से मूच्छा तक आ जाती है । परिचय बढ़ने पर सकोच और श्लेष की जड़ता पिघल जाती है । मनोविनोद होने लगता है—

सकुच उर मनहि मन वारी । गहु न हाथ रे जोगि भिखारी ॥

औहुट हो स जोगी तौर घरी । आव वास कुरकुन करी ॥

हौ रानी तू जोगि भिखारी । जोगिह भोगिह कौन चिन्हारी ॥”^४

प्रबन्ध काय में प्रयत्न का चित्रण करने के लिए प्रचुर अवसर और क्षेत्र प्राप्त होता है । साध्य के मिल जाने पर बहुत क लिए भी अधिक नहीं रह जाता । सूफी का या में इसीलिए वियोग की अपेक्षा सयोग चित्रण कम है । पर सयोग का चित्रण सम्पूर्ण अनुभवों, चट्टाया क्रियाओं और हावा के साथ किया गया है । मधुयामिनी में मिलन और सयोग का वर्णन करने में अनेक स्थलों पर मर्यादा और साहित्यिक नील का उत्लघन भी है ।^५ ऐसे उत्तेजक और अश्लील सयोग शृंगार में लौकिक पक्ष ही अधिक उभरा है, आध्यात्मिक बहुत दब गया है । सयोग या केलि क्रिया पक्ष को छोड़कर, आध्यात्मिकता का पूरा का पूरा सन्केत है ।

मधुयामिनी के अभूतपूर्व सुख और पति प्रेम की जा अनुभूति प्रयसी को

१ पिठ हिरदम मह भट न होई । केहिरे मिलाव कहो केहि रोई ॥”

—जायसी प्रभावली—वही, पृ० १७७

२ वही, पृ० १३३

३ अनचिह पिठ काया मन माहा । का में कहय महम जो वाहा ॥”

—वही पृ० १३२

४ वही पृ० १३४

५ जायसी प्रभावली पृ० १४०

होती है, उसका वणन आध्यात्मिकता की ओर सकेत अवश्य करता है। चारों ओर प्रिय ही दीसता है शृंगार कर उसके पास जान की आवश्यकता नहीं रहती।^१

पति पत्नी का मिलन आध्यात्मिक मिलन है। प्रेयसा का अधरामत पान जीवन को अमर कर देता है। प्रिय जोर प्रयसी गले मिलत ही इत का दुख भूल जात हैं। सो जोर साहाग की तरह दोनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं। दोनों के बीच का अंतर मिट जाता है।^२ इत भावना का ऐसा तिरोभाव होता है कि कौन किस पर रीझ और कौन किस को रिझाये, यह स्थिति भी उपस्थित नहीं होती। प्रिय प्राप्ति की यह स्थिति सूफी साहित्य का चरम लक्ष्य है। साधक जब साध्य के साथ आनंद सभोग की इस परम दशा को प्राप्त करता है तीनों लोकों में बधावा बजने लगता है। धरती में आकाश तक खुशी की सहनाहवाँ बज उठती हैं—है भी सचमुच यह ऐसे ही आनंद उल्लास का अवसर।

उपरिलिखित इन सभी मिलन चित्रों में लीखितता से अधिक अलीखितता है। इस अलखड मिलन को ही, जिसमें प्रिय और प्रियतम एकाकार हो जाते हैं फना कहा गया है। का रीझे रिझ बावई में डा० सरला शुक्ल ने भी फना की स्थिति बताई है।^३

सूफी कवि लीखित सौंदर्य से परम सौंदर्य की ओर अग्रसर होता है। क्या सयाग क्या बियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है, जगत के समस्त यापार जिसकी छाया से प्रतीत होते हैं।^४ 'दुख जगत के नाना रूपा को उसी अयक्त ब्रह्म के यक्त आभास मानकर सूफी लाग भाव मग्न हुआ करते हैं।'^५

१ जायसी प्रभावली प० १४३

२ कहि सत भाव भई कठ लागू । जनु कचन और मिला सुहागू ॥

—वही प० १३९

३ प्रेम बिछोहे जाहिदिन दुहुमिलि पूजी आस ।

ती ह लोक बधावरा । महि पाताल अकास ॥

—मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० १००

४ हि दी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल प० ४९४

५ जायसी प्रभावली प० ५५

६ वही, पृ० १३५

(ग) प्रेम माग की बाधाये

सूफी कविया का प्रेम निरूपण आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना के निमित्त किया गया है। आध्यात्मिक प्रेम में प्रमी (साधक) और प्रिय (साध्य परम तत्त्व) का एकात्म कठिनाई से हाता है। साधक को सत्कार से पूर्ण विरक्त होकर एकनिष्ठ भाव से प्रेम माग में आग बढना पड़ता है। उसे अपना वस्त्रिया को परिच्छेद करना पड़ता है। सामारिक कामनाओं पर विजय प्राप्त करना पड़ती है। तब वही उसे प्रिय की लालन मिलती है। इस आध्यात्मिक कठिनाई को रक्षित कराने के लिए प्रेमाख्याना में प्रेम माग की कठिनाइयों का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

प्रेममाग में अनेक बाधाएँ आती हैं। यह माग अत्यंत दुःख है। यह स्वर्ग से भी ऊँचा पहाड़ है बिना आश्रय के इस पर चढ़ना है।^१ कठिन इस दुःख मयत पर चढ़ना हसी खेल नहीं, इसमें अनेके अलक्ष्य घाटियाँ हैं। जिन तक पक्षिमो अथवा चींटियों की भी पहुँच नहीं। माग की खाइयाँ लक्ष्मणा तो दूर किनारे इसकी पाताल जसी गहराई को देखकर ही अघाएँ बाँध जाती हैं।^२ माग की कठिनाइयों और समुद्र की गहराइयों को देख कर पर डिग जाते हैं। प्रेम दुःख की भीषणता को व्यक्त करने के लिए हिन्दी की अधिकांश रचनाओं में नायकों का लम्बा लम्बी यातनायुक्त यात्राएँ करनी पड़ी हैं। मृगावती, 'मधुमालती और 'पद्मावत' आदि सभी रचनाओं में इन यातनायुक्त यात्राओं की याजना है। इन यात्राओं में अनेक मानवीय अमानवीय अथवा प्राकृतिक बाधाएँ इन नायकों के माग में प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं। इन बाधाओं के रूप में समुद्र, 'गन्धूली, क्षमावात आदि सभी आत हैं और नायक इनसे प्रायः अपने आपको बचाता हुआ अपने उद्देश्य की ओर बढ़ता है।

प्रिया प्राप्ति के लिए नायक का योगी वेग में जाना मध्य काल के हिन्दी प्रेमाख्यानों कायी का विशिष्ट अभिप्राय है। कुछ ही ऐसे प्रेमाख्यान काव्य हैं

१ प्रेम पहार स्वर्ग से ऊँचा । विनु रेवे कोन तह न पहुँचा ।

—चित्रावली, स० जगमाहन वर्मा ना० प्र० स० का० १९१२ ई०
पृ० ४०

२ 'कहेसि कुअर यह पथ दुहला । अस जनि जानू हँसी औ खेला ।

अगम पहार विषम गढ़ घाटी । पक्षो न जाइ चढ़ नहि चाटी ॥

सोह घाट नहीं लाघी । देखि पतार काप नर जाघी ॥

—वही, पृ० ७९

जिनमे नायक प्रिय प्राप्ति के लिए योगी बन कर नहीं निकल पड़ता है। प्रेम कथाओं में घटनाओं को नयी दिशा देने की दृष्टि से यह विधान उपयोगी है ही, साथ ही प्रेम की महत्ता और चारित्रिक उत्कृष्ट के चित्रण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। स्वप्न या चित्र में नायिका को देखने या शूकादि से उसका रूप गुण सुनने व बाद नायक भयंकर विरह यथा से पीड़ित होता है और यह। वियोग बाधा इतनी बढ़ती है कि यह उपलब्ध सभी ऐश्वर्य विलास का परि त्याग करके योगी का वेश धारण कर लता है। दरवेश या फकीर का वेश धारण करना और नायिका अ वयस में निकलना फारसी मनसबी काव्या का अपना विशिष्ट अभिप्राय है। और हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानो में यह असद्विग्रह रूप से स्वीकार किया गया है।

‘पद्मावत में रत्नसेन शुक से पद्मावती का रूप गुण सुनकर विरह से व्यथित हो मूर्छित हो जाता है। मानो सूय की लहर आ गया हो। प्रेममाग के धाव का दुःख कोई नहीं जानता। जिसे घाव लगता है वही जानता है। वह प्रेम के अपार समुद्र में गिर जाता है और लहर पर लहर आने से बेसुध होता जाता है। उस विरह भवन की भाँति उसे घुमाता है। जिसके कारण क्षण क्षण उसका जीव हिलोरे लन लगता है। वह कभी बाहर आता है और कभी भीतर जाता है। क्षण में बिना सास के हा जाता है और जीव डूब जाता है फिर क्षण भर में बीराकर निश्वास छोड़न लगता है। उसका मुख क्षण में पीत और क्षण में श्वेत हो जाता है। क्षण में उसे जेत होता है और क्षण में अचत हो जाता है। प्रेम का स्थिति मरन से भी कठिन होती है। क्योंकि उसमें न तो प्राण जीता है और न ही मृत्यु होती है।’ नायिका दशन के पूर्व ही इस प्रकार की विरह यथा का होना भी इस प्रकार के प्रेमाख्यान का अभिप्राय है। इस यथा की चरम परिणति राज्यत्याग और योगी बनकर प्रिय प्राप्ति के लिए चलने

- १ सुनतहि राजा गा मुरुछाई । जान हू लहरि मुरुज न आई ॥
प्रेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लागि जान प सोई ॥
परा सो प्रेम समुद्र अपारा । लहरहि लहर होइ विसमारा ॥
विरह भवर होई भावरि देई । तिन तिन जीव हिलोरहि लेई ॥
खिनहि निरास चूटि जित आई । खिनहि उठ निघस बोरहि ॥
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता । खिनहि वेत खिन होइ अचेता ॥
कठिन मरन तें प्रेम व्यवस्था । न जिय जियन न दसई अवस्था ॥

मे होती है । राजा रत्नसेन राज्य का परित्याग कर योगी हो जाता है और हाथ में किंगरी ले वियोगी बन जाता है । वह तन मन से पागलो की भाँति आचरण करने लगता है । मन प्रेम में उलझ जाता है और शिर पर जटायें बँध आती हैं । योगी वेग में वह भेखला धारण कर लेता है । हाथ सिंगी चक्र और गोरख धया ले लेता है । शीवा में योगपट्ट और रुद्राक्ष धारण करता है । इस प्रकार तप और योग के लिए धरौंग को तयार कर भिक्षाटन करने चलता है और कहता है मेरे हृदय में जिसका वियोग है, उस पद्मावती को प्राप्त करके ही सिद्ध बनूँगा ।^१ राजा की इस स्थिति से भुक्ति हेतु परिवार के लोग नेग पाने वाले नीकर चाकर राजा और राय सभी भाते हैं ।^२ रत्नसेन जैसे ही होश में ज़मा मानो उसे वही बराग्य उठ खड़ा हुआ । मानो कोई बावला होकर खड़ा हो ।^३ सभी प्रेममाग की बाधाओं को स्पष्ट करते हुए कहा है राजन् । मन में समझ कर लेखा किसी से प्रेम नहीं करना चाहिए । प्रेम का नाम मधुर है पर उस खा लेन पर प्राण देना पड़ता है । जब प्रेम जोड़ा जाता है, तब पहल सुखानुभूति होती है फिर अत में निर्वाह करना कठिन हो जाता है । साढ़े तीन हाथ का यह गरीर सुमह जसा है । इसमें इतना घुमाव है कि पहुँचना कठिन हो जाता है । आकाश में दृष्टि रखने से सुमेरु पर पहुँचा जा सकता है किन्तु प्रेम दृष्टि में नहीं आता । वह आकाश से भी ऊँचा है । आकाश के ध्रुव से ऊँचे पर प्रेम का ध्रुव जागा है जो पहले तिर देकर पीछे इस माग में पर देता है । वही प्रेम के ध्रुव का स्पष्ट कर सकता है । तूम राजा हो और सुखी हो । अपने राज्य और सुख का भोग करो । यह माग अति कठिन है ।

१ तजा राज राजा भा जोगी । ओ किंगरी कर गहे वियोगी ।

१ + + +
चला मुगुति भागै कह साजिक पा तप जोग ।
सिद्ध होउ पद्मावति पाय हिरदै जेहिक वियोग ॥

पद्मावत—वही, पृ० १४२

२ जह लागि कुटुब छोग ओ नेगी । राजा राय आए सब बेगी ॥

—वही पृ० १३५

३ जो मा चेत उठा बरागा । बाउर जनहु सोइ अस जागा ॥

—वही, पृ० १३७

उबकर प्रातः काल उदित होता है उसका प्रभाव स वन के मजीठ और टेसू भी लाल हो जाते हैं । इस रुधिर घाग से घरा जितनी बलात् हुई उतनी गरिक बण्य हो जाती है । जोर इतना ही नहीं तत्रस्थित पक्षि समवाय भी लाल हो जाते हैं । यसन में नवपल्लव वाली वनस्पति उसी से लाल हो जाती है ।^१

पूर्ववर्णित भाग की सभी बाधाओं की सूचना जायसी ने राजा रत्नसेन के प्रस्थान के समय ही दे दी है । वह जानता है कि आगे पर्वतों से आश्रित भाग है । अतीव भयानक पर्वत पड़ेंगे । बड़े बड़े दुग्गम घाट बीच बीच में नदी खोह और नाल पड़ेंगे । स्थान स्थान पर भाग में घोर मिलेंगे । फिर हनुमान जी की हाक सूनायी देगी । उस समय न जान कौन पार होगा तथा कौन थककर रुक जायेगा ।^२ हनुमान जी ने भी भीमसेन से बदलीवन की दुग्गमता का वर्णन करते हुए कहा कि इस भयंकर वन में सिंह योगी ही जा सकते हैं—

अन परमगम्यो य पर्वत सुद्वारह ।

बिना सिद्धगति धीर गतिरचन विद्यते ॥

देवलोकस्य मार्गो यमगम्यो मानुष सदा ।

कारण्यात् त्वामहं धीर वारयामि निबोध म ॥^३

यह पर्वत बड़ा दुग्गम है । वह ही दुर्गह है । हे धीर बिना सिद्धि प्राप्त हुए इस वन में कोई नहीं पहुँच सकता । यह भाग देवलोक को जाता है । मनुष्य के लिए सबथा अगम्य है । हे धीर मैं कृष्णापूर्वक वहाँ जान से तुम्हें रोकता हूँ ।

पुनः कवि भाग की दुर्गहता को व्यक्त करते हुए कहता है । ह अधिक । अब शीख से देखो और दब हा जाओ । आगे जाँखा में पथी का देखकर पर बड़ाओ । जो अधिक पथ भ्रष्ट हो जाते हैं वे मर जाते हैं क्योंकि पथ पर चलना नहीं जानते । सब लोग परों में चरण पादुका धारण कर लो । जिससे न तो परों में काटा चुमे और न ककड़ी भड़े । अब तुम उस वन खण्ड में आ गये हो जहाँ बिना चल के वन में दबकारण्य है । चारा और ढाक का वन

१ जिस मारद वह बाजा तूरु । सूरि देखि हसा मसूर ॥ ब्रजवत, प० २६१

२ है आभ परवत न बाटा । विषम पहार अगम सुठि घाटा ॥

विच विच नदी खाह ओ नारा । ठावहिं ठाव बठ बट पारा ॥

हनुवत कर सुवन पुनि हाका । दहूँ को पार हाइ का थाका ॥^३

—जायसी श्रवावली, प० ५७ ।

प्रेत है । जो यही भटक जाते हैं उन्हें अतीव दुःख मिलता है । जहाँ काँटे
 और झाड़ियाँ हो वहाँ न जाना । मकोय के बसो से चलझकर कघा न फाड़ना
 भिण हस्त की ओर धीटर देग है और वाम हस्त की ओर चदेरी पड़ेगा ।^१
 न दोनो के बीच स अनजाना रास्ता है । राजा इसी दुगम भाग से आगे
 बढ़ता है । मृगारण्य में जुगा की सायरी पर सोकर रात्रि व्यतीत करते हुए
 तिहड़ रास्ता पार करता है । एक महीने में वह किसी प्रकार समुद्र तट पर
 पहुँचता है ।^२ कलिंग नरेश गजपती उसे समझाता है । राजा अपने लक्ष्य पर
 मडिग है । अतः गजपती उसे बोहित दत्ता है । बोहित पर सवार होकर
 चल देता है ।^३ उसका मन सिंहल द्वीप पर केन्द्रित है । बोहित जल की उत्ताल
 तरंगों पर हिलचोरेँ खाते हैं ।^४ एका एका कर सात भयंकर समुद्रों को पार
 करना पड़ता है । 'सीर समुद्र', 'दधि समुद्र', 'सुरा समुद्र', 'किलकिला समुद्र'
 आदि को पार करके राजा 'मानसर' नामक सातवें समुद्र में प्रवेश करता है ।
 वहाँ स सिंहल द्वीप का राजमंदिर दिखायी देता है । राजा सिंहल तट पर
 उतरता है । उसका प्रेम सच्चा है । इसी के बल पर वह प्रेम की कठिनाइयों
 को पार कर सका है । शिवमदप में उसे पद्मावती की झलक मिलती है किंतु
 अभी उसकी कठिनाइयाँ का अंत नहीं है । पावती उसकी परीक्षा लती है ।

१ जायसी प्रभावली पं० ५७ ।

२ 'मासेक लाग चलत तेहि वाटा । उतर जाइ समुद्र के पाटा ।'

वही, पं० ५९

३ 'निहच चला भरम जिउ खोई । साहस जहाँ सिद्धि तहँ होई ।'

—वही, पं० ६२ ।

४ वही पं० ६३ ।

५ 'सीर समुद्र का बरनी नीरू । सतु सरूप पियत जस खीर ।'

—वही, पं० ६४ ।

६ वही, पं० ६४ ।

७ 'सुरा समुद्र जुनि राजा आवा । बहुआ मद छाता दिखरावा ।'

—वही, पं० ६५ ।

८ 'पुनि किलकिला समुद्र मह आए । गा धीरज देखत उर खाए ।'

—वही, पं० ६६ ।

९ 'सतए समुद्र मानसर आए । मन जो कीह साहस, सिधि पाए ।'

—वही, पं० ६७ ।

दाकर उसे मिट्ट गूटिका देते हैं । सिद्ध गूटिका लेकर वह सिंहल गढ़ में प्रवेश करता है ।^१ पकड़ा जाता है । उस शूली की आज्ञा होती है ।^२ अतः भाट के समझाने पर और यह प्रकट करने पर कि यह सचमुच रत्न है । यदि शूली दी गयी तो अनप हो जायगा । महादेव ने अपना रणघट बजा दिया है ।^३ राजा ग घरसेन मान जाता है । रत्नसन और पद्मिनी का विवाह हो जाता है ।

यह सारी बाधाएँ प्रेम की शुद्धता एवं अनयता की परीक्षा के लिये हैं । इसीलिये इ हे यथासम्भव बना चढ़ा कर धनन किया जाता है । जसा कि प्रारम्भ में कहा गया है आध्यात्मिक दुर्गता का यजित करने के लिये मार्ग की इन कठिनाइयों का उत्प्लव होता है । जायसी ने समासोक्ति पद्धति पर इन कठिनाइयों के उत्प्लव करने के साथ आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना की है । इस प्रकार प्रेम भीमासा के अतमय कठिनाइयाँ अपनी साधकता रखती हैं । जितनी ही बड़ी बाधा का प्रमी अपनी निष्ठा एवं निश्चय की दृढ़ता से पार करेगा उसका प्रेम उतना ही एक निष्ठ एवं सच्चा माना जायेगा ।

(घ) प्रेम की परिपक्वता एवं अनयता

प्रमत्त की पूणता एवं परिपक्वता प्रियतम के प्रति एकनिष्ठ एवं अतमय भाव के उदय में होती है । प्रम जटितता की सिद्धि की ओर ले जाता है । इसी लिए विचारका ने जानादृत के समानांतर भावादृत की स्थापना की है । सूफी प्रेम साधना में भी यह अद्वैत भावापन्नता लक्षित होता है । जायसी के प्रेम निरूपण में भी प्रेम की इस परिपक्वता का निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

रत्नसन से जब पद्मावती का मिलन होता है तो उस समय पद्मावती अपने प्रेम की परिपक्वता और अनयता का परिचय देती है । वह अपने प्रेम की चाह और मीन के प्रेम की काटि में रखती है । पद्मावती प्रेम प्रभाव का स्वीकारती हुयी अन्न जन के प्रेम की ओर इंगित करती हुयी कहती है प्रियतम, न जान तुमन यह कौन सी मोहनी डाल दी कि जो प्रेम यथा तुमन की धही मुझमें उष्ण हो गयी । जल के अभाव में जिस प्रकार मीन यकुल हा जाती है और धानभर भी जीवन धारण नहीं कर सकती है, ठीक वसा ही मेरा मन हो गया

१ जायसी प्रभावली, पृ० ७१ ।

२ वही पृ० १११ ।

३ महादेव राघट बजावा —वही, पृ० ११३ ।

४ वही, पृ० १२० ।

था। मुझे भी तरे अभाव की अनुभूति वसी ही हो रही थी जसी अनुभूति मछली को हाती है। मैं चातक होकर 'पिठ पिठ' रटने लगी। मैं विरहाग्नि में बसे ही दग्ध हुई जैसे दीपशिखा दग्ध होती है। तुम्हारा पथ जोहती हुई मैं स्वाति के लिए सीप के समान हो गयी। ढाल ढाल पर उड़न वाली कोकिला की भांति मैं 'याकुल होन लगी। तुम्हारे लिये मैंने चकोरी बनकर रात्रि में निद्रा को तिलांजलि दे दिया। इतना ही नहीं मेरे ही प्रेम के कारण तुममें प्रेम का उदय हुआ। जो भुवण अभिन्न में तपाया गया वह स्वयमेव तप्त हो गया। जैसे सूर्य की अग्नि से हीरा दिपता है वैसे तुम्हारी प्रेम ज्योति न हमको प्रदीप्त कर दिया।'

यह व्याख्य है कि भीन और चातक प्रेम की अनन्यता के लिए साहित्य में प्रसिद्ध हैं। पद्मावता आगे कहती है कि सूर्य के प्रकाशित होने में कमल विकसित होता है और नहीं तो उसमें कहा मिलिंद और कैसी सुगंध ? जो ऐसा प्रियतम पति है उससे अतपट क्या ? तन, मन यौवन और प्राण दक्षर अब मैं स्वयं तुम पर 'योछावर हो गया हूँ।' प्रेम की अनन्यता का इससे भेष्ठ उदाहरण और क्या हो सकता है। जहाँ प्रिय को स्वयं को समर्पित कर देता हो। वह भी सबतोभावना निष्कपट और निःयाज रूप से। रत्नसेन स्वयं प्रेम की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है 'तुम्हारे प्रेम के कारण ही मैं राउय का परित्याग कर भित्तारी हुआ। तुम्हारा प्रेम जो हमारे हृदय में समाया तो चित्तोर में भी मैंने किसी का स्मरण नहीं किया। जय अमर मालती पुष्प के लिए वियोगी बनता है वस ही मुझे तुम्हारा वियाग चढा और मैं योगी बन कर चिक्ल पड़ा। ह बाले ! मैं तुम्हारे लिए भित्तारी हुआ। दीपक के लिए पतिगा बनकर मने आग स्वीकार की। जस अमर कटको की चिन्ता न करके

- १ कवनि मोहनी दहुँ हुति ताहा । जा तोहि विधा सो उपनी माही ॥
विनु जल भीन तपी तस जोऊ । चात्रिब भइउ कहत पिठ पिठ ॥
जरिउँ विरह जस दीपक वाती । पथ जोवत मइउँ सोत सवाती ॥
हारि हारि जउँ कोइल भई । मइउँ चकोरी नीद निसि गइ ॥
मोरे पम पेम ताहि भएऊ । राता हम अग्निनि जो तएउ ॥
हीरा दिप जो सुरुज उदोती । नाहिउ चित पाहन कहँ जोती ॥

—पद्मावत पृ० ३७८-७९।

- २ 'तासो कवन अतरपट आ अस प्रीतम पीउ ।

नेवछावरि गइ आप हा तन मन जोवन जोउ ।'—वही, पृ० ३७९।

कमल की खोज कर पा लेता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे लिये अपने हृदय पर कटको का छेवा लिया । एक बार मर कर जब कोई प्रियतम स आ मिलता है, तो वह दूसरी बार मरने क्या जाय ? जो मर कर जिया हो, उसे मृत्यु कहाँ ? वह तो प्रेम के कारण ही अमर हो गया और प्रिय का सान्निध्य प्राप्त कर मधु का पान करता है । भ्रमर यदि बहुत क्लेश और बहुत आशा के बाद कमल की प्राप्ति करता है तो वह भ्रमर उस पर या छावर हो जाता है और कमल भी हँसकर प्रमत्ततापूर्वक सुगंध दता है ।^१ इस पर पद्मावती कहता है कि अपने मुह से प्रसशा करना शोभा नहीं दता ।^२ इस पर रत्नसेन कहता है— हे प्रिये तुम्हारे साथ मैंने प्रेम की गाँठ जोड़ी है जो अब न काटे कट सकती है और न छुड़ाये छूट सकती है । मैं तुम्हारे रंग में रंग गया हूँ और सूख होकर आकाश भाग से चढ़ा हूँ ।^३ यहाँ पर रत्नसेन के प्रेम की परिपक्वता 'यजित है जिसमें प्रगाढ़ दृढ़ता है । यह स्नेह सम्बन्ध अकाट्य है जिसे किसी भी प्रकार समाप्त नहीं किया जा सकता है । पद्मावती इस प्रेम की परीक्षा सी लती हुयी कहती है— हे भिखारी मागी तू प्रेम में अनुरक्त होने की बात कहता है पर मैं तुम्हें रंगा हुआ (प्रेम में अनुरक्त) नहीं देखती । केवल पट रजन से ही प्रेम का रंग नहीं पहचाना जा सकता । वस्त्र तो बाहरी वस्तु है और प्रेम आंतरिक ।

- १ 'अनु तुम्ह कारण प्रेम पियारी । राज ठाढ़ि क भएउ भिखारी ।
नेह तम्हार जो हिए समाना । चित्तउर माह न सुमिरउ आना ॥
जस मालति वह भवर वियोगी । चना वियोग भलेउ होई जोगी ॥
भएउ भिखारि नारि तुम्ह लागी । दीप पतम होई अँगएउ आगी ॥
भँवर खोजि जस पाव केवा । तुम्ह काटे मैं जिव पर छेवा ॥
एक बार मरि मिल जो आई । दोसरि बार मरकत जाई ॥
कत तेहि भीचु जो मरि क जिया । मा अम्हर मिलि क मधु पिया ॥
भवर जो पाव कबल वह बहु आरति बहु आस ।
भँवर होइ नेवछावररि कबल दइ हसि वास ॥'

—पद्मावत, पृ० ३५५ ।

- २ 'अपने मुह न बड़ाई छाजा —वही पृ० ३५७ ।
३ तुम्हें सा प्रीतिगाँठ हों जोरी । कट न काट छूट न छोरी ॥
रग तुम्हारे रातेउ चढउ गगन होइ सुर ।
जहँ सखि सीतल कह तपनि मन इछा धनि पूर ॥

—वही, पृ० ३५८ ।

हृदय में लोटन से जो उत्पन्न होता है, वही रग (प्रम) है । चाँद के रग (प्रम) में जब मूय रग गया, उसे हाँ साथ प्रात सब रक्त दखत हैं ।^१ पद्मावती रत्नसेन के अभाव में अपनी स्थिति का स्पष्ट करती हुयी कहती है कि तुम्हारे अभाव में मैं जीवन धारण नहीं कर सकती । मैं चातक की भाँति पिउ पिउ रटती हुयी भ्रमण करने लगूंगी ।^२ इस कथन में भी प्रम की अनयता सति त की जा सकता है । कथयत् प्रियतम के अभाव में जीवन का परित्याग करना यह सिद्ध करता है कि पद्मावती के हृदय में रत्नमन के प्रति अपार स्नेह है जो पद्मावती के जावन जाती का मिक्त करता हुआ प्रकाशित कर रहा है ।

रत्नसेन पद्मावती को देखकर वमूध हो जाता है ।^३ अनयनम सुन्दरी अप्सरा के रूप में पावनी का देखकर भी माहित नहीं होता है । यहाँ तक कि उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता है । वह कहता है, हाँ अप्सरि । भल ही तुम लावण्यमयी हो पर मुझे दूसरे से वाता भी अच्छी नहीं लगती है ।^४ यह कथन प्रेम की एक निष्ठता और अनयता का द्योतक है । इससे यह प्रतीत होता है कि रत्नसेन एपलाभा मिलि द नहीं दे । यही पर रत्नसेन के प्रम का सच्चा रूप मुखरित हुआ है । दुष्यंत का गबुतग के समान सोदम अयन दिखायी नहीं दिया । लला कोई खूबमूरत नहीं थी परंतु मजनु की भाँति में वह अनुपमा रमणी थी । यह प्रेम की भाँति है जो प्रियतमा का विश्वसुन्दरी बना देती है । रत्नसेन और पद्मावती के उद्गाह के पश्चात् पद्मावती का प्रेम दा स्थलों पर चरम उत्कृष्ट प्राप्त करता है । पहला स्थान तो वह है जहाँ

१ 'जोगि भिन्वारि करसि बहु वाता । कहमि रग देखी नहि राना ॥

बायर रंग रग नहि होई । हिए ओटि अपन रंग साई ॥

चाँद के रग सुखज जो राता । देखिय जगत साँझ परमाता ॥

—पद्मावत, पृ० ३५९ ।

२ तब द्रुत तुम त्रिनु रहै न जीऊ । चातक भइऊ कष्ट पिउ पिउ ॥'

—जायसी ग्रंथावली पृ० १३९ ।

३ जो मधु चहत परा तहि पाल । मुचि न रही ओहि एक पिणाल ॥

परा भाँति गारख का चग । जिउ तन छाडि सरग कहें छला ॥

—पद्मावत पृ० २२१ ।

४ भगहि रग ताहि आठरि राता । काहि दासरेँ सो भाव न वाता ॥

—पद्मावत पृ० २८ ।

प्राण दे दूँगी । यदि वह जीवित रहा तो मैं भी जीवित रहूँगी । प्रेम की परिपक्वता और अनन्यता का इससे ज्येष्ठ उदाहरण और क्या हो सकता है । रत्नसेन भी पद्मावती के प्रति अपने अनन्य प्रेम को प्रकट करता हुआ कहता है जिसका मन जिसमें रमना है, वह उसी का आश्रय ग्रहण करता है सोना और सुहागा मिलकर एक दूसरे से कदापि विलग नहीं होते वरन तद्रूप हो जाते हैं ।^१ ठीक इसी प्रकार पद्मावती प्रेमभाव की अद्भुत मूलवत्ता की अभिव्यक्ति सत्सिधो में करती हुई कहती है भरा अपने प्रियतम पति से ऐसा अद्भुत भाव हो गया है कि समझ में नहीं आता कि भूगण करने में उसने पात कहाँ जाऊँ ? वह तो मुझे अब सबकुछ दिखाई दे रहा है । मन को टटोलती हूँ तो वही प्रियतम मिलता है । मन तन में अलग नहीं हो सकता है । नेत्रों में भी वही व्याप्त है । वही सिवाय उसके किसी को नहीं देगती हूँ । यह अपना रस अपने आप ही लेता है और अघरा का पान करने पर वह मुझे भी रस प्रदान करता है । हृदय चाल के समान है और कुछ द्वय बचन के लङ्कड़ के समान है । जिसे मैंने बड़े चाव से आगे बढ़ा कर उसकी भेंट किया है । मरी लक्ष भेंट देने के उपरांत उनकी लक्ष से हुलस कर बिपट गयी तब रमणवर्ती पति ने प्रसन्न होकर सम्भाग दिया । सम्पूर्ण जीवन उसी में मिल गया । मेरा मतलब

हाड-हाड मह सबद सो होई । नस-नस माइ उठ धुनि सोई ।

माइ बिरह गा ताबर गूद मांग की सान ।

हो होइ गाँवा परि रहा यह होइ रूप समान ॥

—पद्मावत पृ० २९८-२९९

- २ 'ब' निगार तापट कह जाऊँ । आहि वह दगो टावहि टाऊँ ।
 औ त्रिभु मह तो उहे पिपारा । तन मह माइ न हाइ निरास ।
 ननह माइ तो उहे ममाना । देगऊ जहाँ न देगऊ आना ।
 आनुन रस आनुहि प लई । अघर महें लागे रस दई ।
 हिमा बार कुछ बचन लागू । अगुमन भेंट दीगू होइ पादू ।
 हुलासी लख लख मो लगी । रसान रहमि बगौटी बगी ।
 ओवन सब मिला आहिवाई । हो रे बीच हुनि गई हेराई ।
 जग किन दीख घरे वह आनन लीख ममारि ।
 तम निगार मज लीगमि मोहि कीहनि टटियारि ॥

—पद्मावत पृ० ३९१

बीच में खो गया । द्रुत भाव दूर हो गया । जैसे कोई कहीं धरोहर रख दे और फिर बाद में अपनी धरोहर लौट कर सभाल ले, उसी प्रकार पति ने मेरा सब रस निचोड़ लिया और मुझे रस से रिक्त कर दिया । यहाँ हम देखते हैं कि जायसी ने नायिका पद्मावती के प्रेमभाव की अद्वितीयता की ध्वजता की है जो कि प्रेम की परिणति है । यहाँ पर पद्मावती का आदर्श प्रेम भी प्रकट हुआ है । प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच कर प्रेमी समस्त ससार को प्रियतम मय ही देखने लगता है । प्रेम के परिपक्व हो जाने पर प्रेमी स्वयं को, एक प्रकार से पूर्ण रूपेण खो कर अपना अस्तित्व ही नष्ट कर देता है, जिसे स्पष्ट करते हुए जायसी ने रत्नसेन की अवस्था का चित्र इस प्रकार खींचा है—

‘बूद समुद्र जस होइ मेरा । गा हेराइ अस मिल न हेरा ।

रगहि पान मिला जस होई । आपहि सोइ रहा होइ सोई ।’

बहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार बूद का समुद्र में मिलन हो जाय और बहुत दूरी पर भी न मिल सके अथवा जिस प्रकार ताम्बूल पत्र रंगों में मिलकर अपना अस्तित्व खो बैठ उसी प्रकार राजा रत्नसेन ने अपने को खोकर प्रेम में मिला दिया और प्रेमी एवं प्रेम पान मानो दो से एक हो गये । प्रेम की परिपक्वता और अनन्यता का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है ?

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जायसी ने प्रेम निरूपण के क्रम में प्रेम के उस परिपक्व एवं अनन्य रूप का निदर्शन किया है जो प्रेम की अद्वितीय स्थिति तक ले जाता है । जायसी की दृष्टि एक साधक की दृष्टि है । उनके लिए प्रेम सब कुछ है । जो ज्ञान, ध्यान योग यन से नहीं मिल सकता वह सब प्रेम की प्रगाढ़ अनुभूति एवं अनन्य साधना से उपलब्ध हो जाता है ।

[च] आलम्बन (नायिका) का स्वरूप

सूफी प्रेमगाथाओं का बीजभाव है प्रेम या रति । रति का प्रेरक या उत्तेजक है मोदय । मोदय ही सबसे प्रथम प्रेमी को आकर्षित करता है । मोदय ही प्रिय को पाने उसके उपभोग और उसके सान्निध्य साहचर्य की लालसा जगाता है । यही लालसा वासना का सहयोग पाकर उत्कट कामना सकल्प और रति या प्रेम का रूप धारण कर लेती है । मोदय द्विविध होता है । प्रथम रूपात्मक (शारीरिक) और द्वितीय शील प्रधान (आन्तरिक) । शील का ज्ञान तो

बहुधा आलम्बन के जीवन में प्रवेश पाने एवं निकट सम्पर्क में आने पर ही होता है । यदा कदा प्रिय के गुण कम की चर्चा सुन कर भी शील का पता चलता है । रूप सुषमा, सुकृमारता, हाव भाव चेष्टाएँ, अलंकार परिधान, शृंगार सज्जा आदि दैहिक सौन्दर्य को आकार देते हैं ।

हिंदी प्रेमगाथाओं में आलम्बन का प्रेयसी की भावभूमि से उठाकर पत्नी के गरिमामय गिरमन पर प्रतिष्ठित किया गया है । प्रेयसी रूप में मिलने के लिये प्रेम की तीव्रता का मूलभूत तत्वा विरह की तीव्रता के लिए अधिक अवकाश रहता है पर चिरस्वन मिलन अदृष्ट सायुज्य निरंतर एकात्मकता, अशक्ति तल्लीनता अनन्त सम्मान सुख सुलभता पत्नी में ही रहती है । भारतीय दाम्पत्य केवल सामाजिक विधान ही नहीं आध्यात्मिक धार्मिक सांस्कृतिक अनुष्ठान भी है—लोक परनाक जन्म जन्मांतर का अविभाज्य सम्बंध ।

किसी भी गुण या विशेषता का ज्ञान दो रूपों में होता है—आलम्बन गत और प्रभावगत (प्रतिक्रिया) रूप में । प्रभाव, प्रतिक्रिया परिणाम एक तो आश्रय में देखा जाता है दूसरे परिवेश, वातावरण या प्रकृति में । प्रकृति परिवेश पर जो प्रभाव कवि चित्रित करता है स्वयं आश्रय बनकर उसकी कल्पना करता है । या आश्रय स्वयं उस प्रभाव का निरूपण करता है । इसलिए परिवेशगत प्रभाव भी आश्रयगत समझना चाहिए । प्रेमगाथाओं के आलम्बन लोकदुर्लभ, चिरन्तन प्रभाववासी नितांत मुग्धकारी अवाधा प्रमोदोत्प्रेक्षक रूप सुषमा-जीवन के अक्षय कोष हैं ।

दैहिक सौन्दर्य चित्रण दो प्रकार से किया जाता है । परम्परागत नख शिख वणन और प्रसंगानुसार भाव को अधिक रसात्मक और उत्कृष्ट पूज बनाने के लिए रूप चेष्टा चित्रण । ऐसा ही सौन्दर्य निरूपण सर्व्व अर्थों में काव्य को समृद्ध करता है भाव का आकार प्रस्तुत करता है रस का अविभाज्य अंग बनता है । नख शिख वणन सभी कवियों का समान होता है । पदक पधन अंगों की बनावट और सुंदरता उनके अनुरूप जाभूषण रूपांकन परिधान, विविध अवयवों और अंगों की चेष्टाएँ तथा उन सबके व्यापक प्रभाव का निरूपण भी नख शिख वणन में किया जाता है । सौन्दर्योत्कृष्ट दिखाने के लिए उपमान भी अधिकतर बड़े हुए और निश्चित से प्रयुक्त किये जाते हैं । ज्ञानपीठ ने पदमिनी को आलम्बन रूप में चित्रित करते हुए उल्लसित भाव से उसका जो रूपांकन किया है वह हिंदी काव्य जगत की अमूल्य निधि है—

माग

‘विनु सेंदुर अस जानहु दीजा । उजियर पथ रन मह कीया ।

बचन रख बगौटी बगौ । जनु धन यह दामिनि परगसी ।
 मुरज बिराज जम गगन बिसेसी । यमुना भौंह सुरसगी देगी ।
 साँटि धार मँहिर जनु भरा । करबट लेइ बनी पर घरा ।
 तेही पर पूरि घर जो मोती । जमुना माय गाम वी गोती ॥ ^१

उरोज

'हिया धार कूच बचन लारु । बनव बचोर उठे जनु चारु ।
 कुदन केल साजि जनु कूद । अमर रतन मीन दुइ मूँदें ॥' ^२

भ्रू-नेत्र और कटाक्ष

'भौंह स्याम धनुष जनि ताना । जा सहें हर मार दिस बाना ।
 सह भौंहनि सरि बैठ न जीता । अछरि छपी छपी गोपीता ।
 भौह धनुक धनि धानुक, दूसरि सरि न बराइ ।
 गगन धनुक जो उग, लाजहि सो छपि जाइ ॥' ^३

ऊपर आलम्बन (पदिमनी) की माँग उरोज, भ्रू-नेत्र और कटाक्ष का सौन्दर्य अद्वित है । यह नव गिर वनन भी बड़ी हुई परम्परा के अनुसार ही है ।

उपयुक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलम्बन का यह सौन्दर्य चित्रण परम्परागत होत हुए भी अपनी विशेषता रखता है । इसमें उपमेय (वण्य वस्तु) का वस्तुपरक रूप भी उपस्थित किया गया है और भावपरक भी । माँग की उज्ज्वलता की 'योजना करन के लिए उस बहती हुई अमर सरिता बसाना' जस्य त मूर्ध्म काय वन्दना का ही काम है । सघन श्यामल बालों के बीच मोती भरी माँग यमुना के मध्य बहती हुई गंगा सी लगती है—अगो क आकार और गठन का आभास भी इससे मिल जाता है । पर ऐसे सौन्दर्यान्वित स रतिभाव के उद्दीपन मन सो विशेष सहायता ही मिलती है और न नायिका के सम्पूर्ण या सम्मिलित सौन्दर्य का मुग्धकारी चिम्ब ही सामने आता है । पाठक उपमानों की लम्बी भीड़ में भटक जाता है सौन्दर्यानुभूति का अवसर हा उस नहीं मिलता ।

जसा कि पूर्ववर्ती पक्तियाँ में सकेत किया गया है जायसी के काव्य में

१ जायसी ग्रन्थावली प० ४१

२ जायसी ग्रन्थावली प० ४६

३ वही, पृ० ४२

नखशिख वणन परम्परागत हुए भी भुग्भकारी, भावोत्तेजक तथा सुधमा सम्पन्न भी है । उससे आलम्बन की अपूर्वता अनुपमयता अभिव्यजित होती है—

ललाट

‘कहो लिलार दुइज न जोनी । दुइजहि जोति वहाँ ओती ।
सहस बिरिन जो मुरज दिपाई । देखि लिलार सोउ छपि जाई ।’

ललित कपोल

‘पुनि बरनी का सुरग कपोल । एक नारग दुइ किये अमोला ।

+

+

+

तेहि कपोल बाएँ तिल परा । जेइ तिल देखि सो तिलतिल जरा ।”

पारदर्शी ग्रीवा

‘पुनि तेहि ठाव परी तिन रेखा । धू ट जो पीक लीक सब देखा ।’

सुधा मधुर-वचन

रसना कहो जो कह रस बाता । अमृत बन सुनत मन राता ।

हर सो सुर घातक कोकिला । बिनु बसत यह बन न मिला ।”

पोयूप पगे अघर

अघर सुरङ्ग अमिय रस भरे । बिम्ब सुरङ्ग साजि बन परे ।

फूल दुपहरी जानो राता । फूल झरहि ज्यो ज्यों कह बाता ।

हीरा लेइ सो विदुम घारा । बिह सत जगत होइ लजियारा ।”

अमिय अघर बस राजा सब जग आस करेइ ।

केहि कह कवल बिगासा, को मधुकर रस लेइ ॥’

मुक्ताभास मुस्कान

जह जह बिह सि सुमावहि ह सी । तह तह छिटकि जोति परगासी ।

कापिनिदयकि न सरवरि पूजी । पुनि ओहि जोति और को दूजी ।

हसत दसन अस चमके पाइन उठे झरनिक ।

दारि सरि जो न क सका फाटेउ हिया दरनिक ॥

१ जायसी म् यावली पृ० ४३

२ वही प० ४४

३ वही पृ० ४५

४ वही, प० ४४

५ वही प० ४३

६ वही, पृ० ४४

७ वही, पृ० ४४

ऊपर पद्मावती की सुकुमारता सुषमा, मुस्कान और उनके व्यापक प्रभाव की अनुपम व्यंजना हुई है। कपोलो को नारंगी के रूप में चित्रित करना अलंकार मात्र नहीं, उनकी सुकुमारता, मधुरता, रसमी क्षीनी अरुणार्द्र, स्निग्धता शीतलता और क्षीणता का भी परिचायक है। तब विश्वमन मिलिंद उस पर मुग्ध क्यों न हो ? पानपीक निगलते हुए पद्मावती के गले में अरुण रेखाएँ पड़ जाना तो उसकी विश्वदुलभ सुकुमारता और शरदपूनम सी उज्ज्वल ज्योत्स्ना के समान पारदर्शिता का परिचायक है।

आलम्बन में जो सौंदर्य प्रतिष्ठा की जाती है, वह कल्पना की कारीगरी या बाजीगरी दिखाने के लिए या लक्ष्यहीन अबाध दौड़ प्रकट करने के लिए नहीं की जाती है। आलम्बन का सौन्दर्य उसके आंतरिक जीवन से तो अलख सम्बन्ध रखता ही है आश्रय के जीवन में भी वह अनुपम अनुभूति बता देता है। उसके भविष्य को भी चिरन्तन सुषमा, अभूतपूर्व अक्षुण्ण रस ललकार कर देता है। जब कवि को ऐसी कला सिद्धि मिलती है, तभी वह अमर काव्य की सृष्टि करता है। प्रेम काव्या के सजक इस प्रयाजन में पूर्णतः सफल हुए हैं। जायसी ने रति के आलम्बन रूप में पद्मिनी का जो स्वरूप अंकित किया है, वह अनन्यतम है।

ऊपर प्रस्तुत चिर प्रगासित सुषमा पुत्र आलम्बन के अघर पीयूष आप्लावित हैं। उनकी स्वर तरंगा में अमन उच्छलित है। उनके गन्धों में फूल झड़ते हैं, उसकी अघर माधुरी से पीयूष की वर्षा होती है। जिसके अघरों से पीयूष वर्षा होती हो वह आश्रय के जीवन को कितना रसमय कर देगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है—महान्, एकांत और अमिश्रित अनुभूति से उसका आस्वादन किया जा सकता है।

साधक के उजाड़ विद्यावान् जीवा को सधमुच पीयूष ही चिर वसन्त में बदल सकता है। जिसका जीवन निविड अन्धकार के पंजों में पड़ा दम तोड़ रहा है, उसे दामिनी को लजाने वाली और प्रस्तरा में ज्योति अगाने वाली मुस्कान ही आलोकित कर सकती है। और अगर हीरो की चमक विद्रूप की अरुणिमा के साथ मिलकर साधक के जीवन पथ को आलोकित करे तब तो कहता ही क्या ? हीरो की चिटटी चमक चकाचीध भी पन्ना कर सकती है तब आँखें उस रूप का पूर्ण आस्वाद ही कैसे लेंगी ? गुलाबी आमा मिल जाने से वह प्रभावशाली सुकुमार स्वर्णिमा ज्योति बन जायगी। सौंदर्य चित्रण की गरिमा उसके प्रभाव में निहित है। प्रभाव परिवेश गत और आश्रयगत—दो रूपों में देखा जा सकता है। सूफी का य का आलम्बन है परमात्मा जिसको

प्रेयसी और पत्नी व प्रतीक के रूप में निरूपित किया गया है। उसका प्रभाव भी विश्व-यापक दिखाया गया है। ब्रह्म रूप नायिका जब इस पृथ्वी पर अवतरित होती है यह घरती आलार और सो दय स जगमगा उठती है। जिस रात का पद्मावती का जन्म सिंहल द्वीप में हुआ, चारों ओर प्रकाश उमड़ पड़ा। रात्रि भी दिन की भांति जगमगा उठी।^१ न केवल यह घरिणी ही आलार में निमज्जित हो गयी, स्वर्ग भी आलोकित हो गया। जिधर वह निकलती है प्रकाश की बाढ़ आ जाती है सुपमा से वह पय अभिसिंचित हो जाता है। मानसरावर भी उसका चरण-स्पर्श व लिए उत्तेजित हो जाता है। जिधर देखती है, कमल खिल जाने हैं जिस ओर अपनी मुसकान छटा छिटकती है हीर मानी बरमन लगत हैं—

वहा मानसरा चहा सो पाई । पारस रूप इहा रुगि आई ॥
भा निरमर त ह पायन परस । पावा रूप रूप क दरस ॥
मलय समीर चाम तन आई । भामीतल ग तपति बुझाई ॥
न जनी कौमु धोन ल जावा । पुन त्मा मैं पाप गवावा ॥
नन जो दखा कमल भा निरमल नीर सरीर ।
हसत जा देखा हस भा बसन जाति नग हीर ॥^२

रूप सुपमा व इस प्रवाह और आलोक व इस चारों ओर को देखकर विस्मय आनंद होता है तब और मन सुख पुलकित और विस्मरण शिथिल हो जाता है। मानसरावर का चरण स्पर्श करने और मन का नाप जान करने के लिए ऊपर उछलना कबि के मौल्य चमत्कृत हृदयात्मिक को तो प्रकट करता ही है नायिका के ब्रह्मत्व का भी निरूपित करता है। एक टोकरी में नवजात शिशु श्रीकृष्ण को मथुरा ले जात हुए त्रिहोने यमना की लहरों का उछलकर उनके चरण स्पर्श करने का वणन पड़ा है उह इस पर अविश्वास न होगा।

आश्रय द्वारा आलम्बन का यह 'यापक' रूप वणन अतीव मनोवैज्ञानिक है। प्रेमी यदि अपने प्रिय के रूप गुण की अद्वितीय न समझ तो उसका प्रेम एक निष्ठ नहीं हो सकता। अपने प्रिय का सर्वाधिक सुंदर मानकर ही प्रेमी उस पर आसक्त होता है। इसका साथ ही प्रेमी अपने प्रिय के रूप से दय का विराट देखना चाहता है। उसका झलक स यह समस्त दृश्य लोक को आच्छादित समझता है। यह केवल आध्यात्मिक प्रिय के बारे में ही नहीं, भौतिक

१ भा निसि मट दिनकर परकासु । जब उजियार भयत कविलाम् ॥

जीवन में भी देखा जाता है । नविया की बात तो निराली ही है, सामान्य प्रेमी भी अपनी प्रेयसी के रूप गुण को बड़ा चढ़ा कर कहते हैं, वह किसी से छिपा नहीं है ।

सूफी प्रेमगाथाओं में नायिका (साध्य) की जो रूप सुषमा, जीवन सुकुमारता अतः प्रभाव व्यापकता चित्रित की गयी है वह केवल अलंकार वादिता और गान्धर्व परम्परा पालन नहीं है वह प्रयसी के ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा है । प्रियतमा का नख शिख चित्रण ब्रह्म के उन गुणों की अभिव्यक्ति और अनुभूति है, जिनके कारण वह नति नेति कहा जाता है । उसके अंग प्रत्यंग, अवयव और चेष्टाएं क्रियात्मक और भावात्मक गुण सभी ब्रह्म के प्रकट अप्रकट स्थूल और सूक्ष्म गुणों के प्रतीक हैं । इस प्रतीकों का अर्थ है उस अयक्त को व्यक्त करना । इनका प्रतीकात्मक अर्थ जान बिना प्रेयसी के ब्रह्म रूप का बाध नहीं हो सनता विद्वानों ने इनमें जो प्रतीकात्मक संकेत ग्रहण किये हैं वे उल्लेखनीय हैं ।

येही बाल—अघकार, आवरण माया, अज्ञान परमात्मा के साक्षात्कार में बाधा, दुर्बोधता, आत्मा परमात्मा के बीच “पवघान”^१ साधक यदि कचो की सधनता, दयामलता, उमिलता में ही रम गया तो साध्य के सच्चे स्वरूप का परिचय नहीं पा सकता ।

माँग—प्रकाश, ज्ञान बोधपथ साधना की सरल सीधी पगटण्डी ।^२

मौह—ब्रह्म की संकेत वज्रता उसके भावा का जाभास पाने में बाधा, साधना पथ की दुर्गमता और कठिनाई । प्राणोत्सर्ग करके ही उसकी साधना कथ पथ पर चला जा सकता है । इसीलिए उह खडग धनुषादि बताया गया है ।^३

नयन तथा फटाश—ब्रह्म की प्रेमात्मादक मद विह्वलकारी । ब्रिहत्तेजक

१ ‘वेनी छोर झार जो धारा । सरग पतार होइ अचियारा ।

—जायसी ग्रंथावली पृ० ४१

२ विनु सेंदुर अस जानहु दीआ । उजियर पथ रन में कीआ ॥’

वही पृ० ४१

३ जायसा ग्रंथावली पृ० ४२

४ जेहि मद चला परा तहि पाए । सुमि न रही जोहि एक पिया- ॥

वही, पृ० ८४

और मारकशक्ति ।^१ प्रेम स्वीकृति मक्कत ।^२ समय का आवत्तन प्रत्यावत्तन आहोलन मक्कत ।^३

अधर—अनुराग । अधर मुस्कान—प्रेम ज्याति ।

दत्तपक्ति तथा मुस्कान—अखण्ड जाति ज्योति,^४ ब्रह्म की सुषमा वा आभास या क्षलक ।

रतना और वाणी—इतिहास और घम आदि का आगार ।^५

सूफी काव्य में आने वाले अनक प्रतीका के अर्थ मुहम्मिन फज काशमी ने रिसाल पी भिगवाक में प्रस्तुत किया है । 'सूफीमत साधना और साहित्य' में भी इनकी व्याख्या दी गई है ।^६

आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति पद्धति एक अनिवार्य तत्त्व है । मीर अदुल वाहिद विलखामी ने अपनी पुस्तक 'हकायके हिंदी में ब्राह्मणायाम में उद्धृत लौकिक और आध्यात्मिक काव्य में आने वाले अनेकानेक शब्दों का सूफीमत और कुरआन के अनुसार प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट किया है ।^७ आलम्वन (नायक) का स्वरूप

सूफी काव्य का नायक धीमेरु के गुणों से सर्वाधिक अनुपात में सम्पन्न है । वह वीर निणय युद्ध कुशल उगार प्रतिभाशाली बलिष्ठ चेतनाशील क्षमाशील सुंदर क्षत्रिय राजकुमार है । मुरय रूप से वह रति और उत्साह का आधर है । किसी विश्वविभूत जीवन रूप सुषमा गणशील की अक्षय राशि राजकुमारी के चित्रणन रूप गुण श्रवण या साक्षात्कार से उसके हृदय

१ 'दिस्ति वान तम मारहू घायल भा तहि ठाव ।

दूसरि बात न बोल, लेइ पदमारति नाव ॥ वही पृ० ९८

२ 'जोगी निस्ति दिम्ति सी ली हा । नन रापि ननहि जिउ दी हा ॥

वही पृ० ८४

३ वही पृ० ४२

४ वही पृ० ४३-४४

५ वही पृ० ४४

६ वही पृ० ६६

७ सूफीमत-साधना और साहित्य डा० रामपूजन तिवारी । पृ० ५२४

८ सन् १५६६ ई० फारसी में लिखित और सयद अनवर अहमद रिजवी द्वारा हिन्दी में अनूदित होकर ९ फरवरी १९५७ को प्रकाशित ।

९ हकायके हिन्दी, प्रथम अध्याय, पृ० ३७-७१

म प्रेम का उदय होता है। वह प्रेम प्रथम दशन का ही नहीं, प्रथम गुण श्रवण का भी है। नायक इतनी आनुकता और कल्पना का भंडार है कि वह वैयक्तिक रूप में मिलने से पहले कल्पना के मधुवन में भावुरता को रोमांच सिहरन से कानर आगा की रगीन चाँदनी के तले अपनी प्रेमसी से भेंट कर लेता है। उसके साहचर्य सुख की अनुभूति भी पा लेता है। देखते या सुनते ही नायक के हृदय से प्रेम का श्रवाघ आकुल, अजस्र और आवग भरा उत्साह उमड़ पड़ता है तोत के द्वारा पद्मावती का सौ दय वणन सुनकर रत्नसेन भी सुघ बुध भूल जाता है—

“सुनतहि राजा गा मुरसाइ । जानी सहारे सुरुज क आई ।

प्रेम घाव दुख जान न कोई । तेहि लागै जान पै सोई ॥

खिनहि उसास बूडि जिउ जाई । खिनहि उठ निसर बीराई ॥

खिनहि पोत खिन होइ मुख सता । खिनहि चेत खिन होइ अचेता ॥’

सूफी नायक प्रेमपथ का वधटक और आस्थावान पथिक है। ससार की कोई विघ्न बाधा उस नहीं राक सकती कोई अवराध विचलित नहीं कर सकता और कोई प्रलोभन पथ भ्रष्ट नहीं कर सकता। प्रेम की आधार रति की आलम्बन भावुकता और कल्पना की विधाम, अभिलाषा की आकषण के द्व जोर अभ्युष्ण सौ न्य सीमा प्रयसी ही समस्त प्रयामो की पहुँच है, समस्त समय का लक्ष्य है समस्त साधना की साध्य है। सभी सकल्प, सभी चेतना सभी कम सभी भाव उसी की साधना में सल्यन करता है। इसीलिए प्रेमी साधक की स्थिति ऐसी हो जाती है—

जब भा चेत उठा बरागा । बाउर जनी सोइ उठि जागा ॥

आवत जग बालक अस राजा । उठा रोइ हा जान सो खोआ’ ॥”

प्रेम की दूसरी कसौटी है कि प्रेमी अपने प्रिय के रूप से जीवन और जगत की समस्त परिघियों को जगमग पाये। एक सच्चा प्रेमी अपने प्रिय को विराट रूप में देखता है। प्रिय में जगमगाते सौ दय की इसी व्यापक भावना अलंकार शास्त्र को जन्म दिया। सूफी नायिका के ईश्वरत्व की बात

१ जायसी अथावली प० ४९

२ भलहि रग अछरी तोर राता । मोहि दूसर सौ भाव न बाता ॥

मोहि आहि सबरि मुए तस लाहा । नन जो देखसि पूछसि काहा ?”

वही, पृ० ९१

३ वही, पृ० ४९

२। सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

एक ओर रसकर विचार किया जाय तो भी सौन्दर्य की विराटमयता, सब व्यापकता, लोकातिशयता ही रूप-वर्णन में सर्वाधिक तत्त्व है। प्रेयसी की आनन-अधी को देख कमल, चाँद रति आदि के लज्जन और नारंग से कपोल^१ मुरग अमीरस भरे अघर^२ अमृतमिश्रित कोकिला का स्वर^३ ज्योत्सना सी मुसकान आदि की कल्पना ही हमका प्रमाण है कि कवि अपनी नायिका को प्रकृति के असीम क्षेत्र में व्यापक दर्शना चाहता है। सूफी प्रेमी अपनी प्रेयसी को ब्रह्माण्ड के वर्ण-वर्ण में व्याप्त देखता है।

सूफी नायक अभी है बामी नहा। एकनिष्ठ मो दर्पोपासक है रूपलोभी नहीं। अपनी प्रेयसी के सिवा किसी दूसरे के यौवन से दय उपभाग की उस कामना नहा। प्रयसी के अतिरिक्त कोई भी रूप सुपमा कोई भी यौवन समपण उस आकर्षित नहीं कर सकता। पायनी एक अप्सरा का रूप धारण कर रत्न सेन के प्रेम की परीक्षा लन आती है रत्नसेन अपने अवल प्रेम का परिचय देते हुए कहता है—

‘मलहि जउगी रंग तोर राता। मोहि दूसर सो भाव न वाता’।^४

प्रेम की सच्ची कसौटी है वियोग। संयोग है प्रेम का सम्भोग पक्ष। उपभोग है काम की तृप्ति। काम पक्ष में प्रेम का गाम्भीर्य स्थायित्व अनयता उज-बलता उसके लिये किय गये त्याग और चुकाये गये मूल्य का पता नहीं चल सकता। प्रेम की निष्ठा दण्डता अडिगता आत्मसमपण सुख बभ्रव का उत्सव प्रेम पथ के बरत सहन का पता वियोग से ही चलता है। वियोग ही प्रेम का त्याग पक्ष या साधना पक्ष है। साध्य के महत्व मूल्य और अलभ्यता का पता भी वियोग पीड़ाओं के अनुपात से चलता है।

सूफी नायक की प्रेयसी असामान्य सुन्दरी है—लावातीत आन द बिघात अमय शानि और परितृप्ति दात है। उसके पाने के लिए कठिन परीक्षा से भी गुजरना पड़ता है। वियोग ही परीक्षा है—उसकी पायता की कसौटी है। भीषणतम कष्ट। दुल य बाधाओं और अमल्य जमावा की जमीकार करता है। वह पगडंडी विहीन सघन तिमिर आतंकित धनो में अपनी साधना की लो

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४४।

२ वही, पृ० ४३।

३ वही पृ० ४४।

४ वही पृ० ४३।

५ वही, पृ० ९१।

मलाता पथ बनाता है। बीहड़ बियावान रेगिस्तान को अपने अंगुष्ठों की भागीरथी से सींचता है। दुमम भूधरा के अभिमानोन्नत मस्तकों पर अपने कठिन कम की अमिट लकीरें खींचता है। प्राण प्यासे बोखलाए सागरों की लहरों से खेलता हुआ पार हो जाता है।

उसके विरहादगारों में अतृप्तता का चीत्कार है। उच्छ्वासों में जीवन भर के समस्त कलुषा और वासनाओं का भस्म कर देने का सामर्थ्य है। उसकी भीगी सिसकियों में प्रिय की निमग्नता को पिघला देने की क्षमता है। प्रेम वियोगी साधक की अवस्था ऐसी करुणाजनक है कि घरती आकाश, वन कानन और पशु पक्षी भी उसके प्रभाव से नहीं बचते, मानव की बात ही क्या ? प्रभाव प्रतिजिया ही किसी काम या भावना की कसौटी है। यह प्रभाव प्रकृति परिवेश और प्रिय के हृदय परिवर्तन दोनों पर साक्ष्य देखा जाता है। रत्नसेन की वियाग जजर अवस्था और कठोर साधना देखकर महेश भी 'मयारू' (दयालु) बन जाते हैं।^१ यहां तक कि पद्मावती के पिता मधवसेन द्वारा रत्नसेन का बन्दी बनाकर सुली देने की बात जानकर भगवान् शंकर उसके विरह युद्ध करने का तत्पर हो जाते हैं।^२

नायक के अभूतपूर्व कष्ट सहन, लोक दुःख त्याग अचल प्रेम, अनादित आस्था को दख नायिका हृदय भी द्रवित हो जाता है। सहानुभूति या सम वेदना जब प्रेम का उदय ही उनके हृदय में नहीं होता, वह रति की आश्रय भी बन जाती है—नायक आलम्बन हो जाता है। नायिका भी नायक के समान विरह में तड़पती और मिलन के लिए आकुल हो जाती है। दोनों में प्रेम समान आस्था हो जाती है। भक्त की सच्ची माधना उत्सव भावना, अङ्गि आस्था को देख मगवान् की करुणा उस पर बरसने लगती है।

माधुय भाव की शक्ति का साधक होते हुए भी नायक लौकिक उत्तर दायित्व के प्रति पूर्ण सजग और सचेष्ट है। उसका लोक पक्षी रूप भी उत्तम ही सम्पन्न है तितना अध्यात्म पक्षी। लौकिक रति में धीरभाव की प्रेरक है। पर उसका प्रदर्शन वह नायिका प्राप्ति के लिए ही नहीं करता समाज, कुल,

१ ननहिं चली रक्त के धारा । कथा भोज भएउ रतनारा ॥

सूरज बूढ़ि उठा होइ ताता । ओ मजीठ टेसू बन राता ॥

—जायसी ग्रन्थावली पृ० ९८ ।

२ 'रोवत बूढ़ि उठा ससार । महादेव तब भएउ मयारू ॥'—वही पृ० ९२

३ हिंदी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल पृ० १५५, ३८१ ।

देश और मानवता की स्थिति और रक्षा के लिए भी वह वीरकर्म करता है। किसी भी अपरिचित असहाय की रक्षा के लिए उसकी बलिष्ठ भुजाएँ प्रस्तुत हैं किसी भी अरक्षित उत्पीड़ित के उद्धार के लिए वह जान पर खेल जाता है। सभी नायक क्षत्रियोचित उदारता, कृपा, वीरता, निभयता क्षमाशीलता और विश्व भगल की भावना का अनुपम परिचय देते हैं।

सूफी कवियों ने आलम्बन आश्रय या परमात्मा आत्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट करने और उनमें प्रेम की गूढ़ता गहनता, चिन्ताता रहस्यात्मकता एकरूपता आदि को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें अनेक उपमानों या प्रतीकों के रूप में उपस्थित किया है। केतकी कमल मालती चम्पा आलम्बन है और भ्रमर आश्रय।^१ दीपक और पतंग^२ फितिंग और भग^३, सूर्य और कमल, जल और मीन^४, चन्द्र सूर्य^५, चन्द्रमा और गङ्गा स्वातिबूद और सीप तथा चातक^६, चन्द्र और चकोर^७ साधना क्षेत्र में उन्हें मरजी का और मोती^८ जोगा^९ तथा गुल् च^{१०} गारख और चेला^{११} के रूप में साध्य और साधक को प्रस्तुत किया गया है। गुरु शिष्य के रूप में तो निगुण काव्य में साध्य और साधक अभिव्यक्त हुए हैं अथवा प्रतीक भी परम्परागत है। चांद और सूर्य के रूप में वे सर्वाधिक आये हैं और जबल जायसी में ही। सम्भवतः इसीलिए, क्योंकि सूर्य में आग है और चन्द्रमा में शीतलता विरह और अमन, जलन और शक्ति।

तात्पर्य यह कि सूफी प्रेमकाव्य में आलम्बन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। प्रेम जितना ही ऊँचा प्रगाढ़ एवं प्रेरक है उसका धारण करने वाला भी उतना ही उदात्त वीर सयमी, एकमिष्ठ एवं धर्ती है। जायसी ने प्रेम के आलम्बन (नायक नायिका) को आध्यात्मिक प्रेम की उच्चता के अनुकूल अत्यन्त महिमायुक्त रूप में प्रतिष्ठित किया है। आलम्बन की यत्तिव प्रतिष्ठा

१ जायसी ग्रन्थावली, पं० ७७ १०० १०९, १३५, १५१।

२-३ वही पं० ७७ ५१ ७०, ९९, १००, १३५।

४ वही, पं० १०९।

५ वही पं० ७९।

६ वही पं० ७७ ७८ ८४ ८५ १०० १०१, १२६, १३५।

७-८-९-१० वही पृ० १००।

११ चित्रावली उत्तमान पं० १३७-१५५।

१२ जायसी ग्रन्थावली पृ० १०१, १०९, १३५।

करते हुए उन्होंने केवल फारसी प्रेमार्थाना की रूढ़ियों का अनुसरण नहीं किया है बरन् भारतीय मर्यादा का भा ध्यान रखा है। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने प्रेम की आध्यात्मिक गरिमा के अनुकूल ही आलम्बन को महिमायय एवं धीरोदात्त बनाया है।

(छ) प्रेमी की मन स्थिति

भौतिक जगत में भी प्रेम एक ऐसा तत्व है जो प्रेमी को प्रिय का भावना में निरन्तर लीन करता है। प्रिय का निरन्तर ध्यान करता हुआ प्रेमी उससे मिलने की अभिप्राया सजोये हुए जोक मानसिक स्थितियाँ को पार करके उससे पूर्ण एकात्म भाव स्थापित करता है। यदि प्रेम आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक है तब तो प्रेमी साधक के मन को पूर्ण परिष्कृत भी करना पड़ता है। प्रेमी साधक को रहस्यमयी सत्ता से पूर्ण ऐक्य की अनुभूति सहसा नहीं होती। उसे अनेक मन स्थितियों के पड़ाव को पार करना पड़ता है। पहली स्थिति जागरण (State of awakening) की मानी गई है। सात्व आत्मा गूढ़ और चतुर्ध है। उसका भौतिक पदार्थों से किया गया गठन इन अस्वाभाविक है। यह आत्मा अपने स्वरूप में विलय के लिए—सुद्ध चेतन तत्व से ऐक्य स्थापन के लिए—प्यासुल रहती है। जिस समय यह उपयुक्त गुरु के द्वारा उदबुद्ध कर दी जाती है और ससार की असारता को समझ लेती है उस समय जागरण की स्थिति में आ जाती है। इस अवस्था में जायसी ने अपनी प्रेम कथा में स्पष्ट संकेत किया है। गुरु साते के द्वारा पद्मिनी की रूपचर्चा सुनकर सहसा भौतिक ससार से विरक्त हो जाता है। यह रूप वणन उसे इतना प्रभावित करता है कि उसकी भौतिक चेतना लुप्त हो जाती है। वह सत्ताहीन हो जाता है और जब प्रियतमा के उक्त शिष्य सौन्दर्य की तमयता में कुछ समय सत्ताहीन बने रहने के उपरान्त उस होग जाता है तो उसने हृदय में धराय की भावना उत्पन्न होती है और उस सारा ससार नीरस प्रतीत होने लगता है—जब भाषित उठा बरामा ।^१ हीरामन तोत द्वारा पद्यावती के अनिवचनीय रूप की चर्चा सुनकर राजा रत्नसन का सहसा ससार से विरक्त हो जाना जागरण की स्थिति है।^२ जागरण के पूर्व का समय है जब साधक रत्नसन गुरु से दिव्य सौन्दर्य का संदेह पाता है तो वह उस स्थासव की मन्त्रि में विभोर हो उठता

१ जायसी प्रभावती पृ० ४९ ।

२ 'गुनतहि राजा का मुखसई । जानी लहरि मुख क आद ॥'

है । यह वह अवस्था है जब माधक (प्रेमी) मुखा रूपी गुरु से पद्मावती रूपी विराट ब्रह्म से दिव्य मौल्य की झलक पाता है तो वह उसकी प्राप्ति के लिए तड़प उठता है । जब प्रत्यक्ष जगत में उसे नहीं पाता है तो विरह में तड़पने लगता है । अन्य सूफी कवियों ने भी प्रेमी की मन स्थिति का चित्रण उपयुक्त प्रकार से ही किया है ।^१ किंतु सासारिक कर्मों का परित्याग किये बिना और पूणत पवित्र तथा निमल हुए बिना शुद्ध चेतन सत्ता (साध्य) की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है । इसीलिए 'परिष्करण' की आवश्यकता पड़ती है ।

इस दूसरी स्थिति को परिष्करण (State of purification) की अवस्था कह सकते हैं । परिष्करण के लिए सूफी साहित्य में अनकानेक प्रकार के नियमों एवं विधानों की व्यवस्था की गई है । इनमें तोबा (अनुताप) खौफ (ईश्वर भय), तवक्कुल (ईश्वर का विश्वास) फकर' (दय) सन्न (धय), रजा (गाति) रिजा (आशा) ग़क़ (अनुग्रह) आदि मानसिक स्थितियाँ आती हैं । जिक़ (स्मरण) मुराक़बत (ध्यान) शरीअत (विधिनिषेध का पालन), तरीक़त' (गुद्ध मन से भगवान का ध्यान) आदि साधनाएँ भी आत्मपरिष्करणाध्यक्षी माय हैं । आत्मपरिष्करण की यह स्थिति पश्चात्त में भी प्राप्य है । रत्नसन का योगी रूप में निकलकर सात समुद्र पार करना सूफी को सहज स्वीकार करता परिष्करण की स्थिति के रूप में माय हो सकता है । विरह की ज्वाला आत्मा का सारा कलुष भस्म कर उसका परिष्कार कर देती है । इसीलिए भक्तों और सूफी साधकों को हम सायक विरह में अतिशय 'यथित' पाते हैं । इस अवस्था में साधक अपने साध्य का प्राप्त करने के लिए प्रयत्नगाल हो सकता है । विरह की ममानक पीड़ा इस सासारिक वासनाओं से अलग कर एकमात्र प्रिय के चित्त में लीन कर देती है । वह सारे ससार में प्रिय की अनुभूति करने लगता है । विरह का यह प्रभाव क्रमशः आत्मा का परिष्करण करना जाता है और साधक (प्रेमी) साध्य

१ प्रेम प्रीति जो जिउ डरगरई । प्रीतम राख और सब जरई ॥

पेम दुख मख दुख सो भारी । निल तिल मरन सहज दब हारी ॥

प्राण जात वर छाडि सरीरा । बिधि कउसिर प्रेम की पीरा ॥

राज दय धन जोवा गऊ । जब सो जीव विसमर भएऊ ॥

धाइ प्रेम समु यह देखि दीर घसि जेउ ।

क मानिक कल ऊबरी क वह पय जिउ लऊ ॥

—जायसी का पश्चात्त) डा० गोविंद त्रिगुणाधर ।

गास्त्रीय भाष्य) पृ० १५७ पर उद्धृत ।

(प्रियतम) प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाएँ करने लगता है। साधक शुद्ध और निर्वृत्तिपरक आचरणा की सहायता से शरीर और मन को शुद्ध करता हुआ इस साधना पथ पर अग्रसर होता है। इस साधना मार्ग में चार पड़ाव माने गये हैं : शरीरगत, तरीकत, हकीकत और मारिफत। इस साधना की अंतिम अवस्था हाल अर्थात् भावातिरेक की चरमावस्था मानी गयी है। यही आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। जायसी ने पन्नावत^१ में यही चारो पड़ावों की आर सजेन करते हुए कहा है -

‘चार बसरे सौ चह सत सौ उतर पार’

यह चारो पड़ाव क्रमशः प्रेमी साधक की उच्चतर मन स्थिति के द्योतक हैं। शरीरगत में वह धार्मिक विधि विधानों का अनुसरण करके अपने मन को धार्मिक एवं पवित्र वातावरण से सम्बद्ध करने का अभ्यास करता है। ‘तरीकत’ की अवस्था में उसकी भावनाएँ एकनिष्ठ होने लगती हैं और वह उपासना में लीन हो जाता है। मानसिक विकास के तीसरे स्तर पर हकीकत की स्थिति में वह हक या सत्य को पहचान लेता है। ‘मारिफत’ की अवस्था में प्रेमी साधक को प्रेम की गहरी अनुभूति होती है। उसका हृदय दण के समान स्वच्छ हो जाता है। जिस प्रकार स्वच्छ दण सूय के प्रतिबिम्ब को पून से अपने में धारण कर लेता है उसी प्रकार मारिफत की स्थिति में पहुँचे हुए प्रेमी साधक का स्वच्छ हृदय परमतत्त्व (प्रिय) के स्वरूप को अपने स्वच्छ हृदय में पून रूप से धारण करने में समर्थ हो जाता है। यही वह अवस्था है जिसमें पहुँच कर प्रेमी अपने को प्रिय के स्वरूप में लय कर देना चाहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी का परिष्करण विषयक विचार भाव प्रधान है फिर भी वे शारीरिक परिष्करण (State of Purification) की आवश्यकता को स्वीकारते हैं।

तीसरी स्थिति प्रकाशानुभव (State of Illumination) की मानी जाती है। यह एक प्रकार से भावातिरेक की स्थिति है। जिसमें साधक को साध्य की प्रेमानुभूति होती है। मुक्त शुद्ध और चतुर्थ सत्ता से पून ऐक्य की स्थिति के पूर्व सांसारिक विघ्न एवम्भार पुन साधक को विचलित करना चाहते हैं। जायसी अपने आराध्य की एक झलक पाकर उसके लोभ का वणन करने लगते हैं।

जहाँ न राति न दिवस है जहाँ न पौन न पानि ।

तेहि वन सुअटा खलि बसा, बोन मिलाव आनि ॥”

गिव मंदिर में पद्यावती का प्रथम साक्षात्कार प्रकाशानुभव की स्थिति के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकाशानुभव के बाद भी प्रिय से मिलन की पूरी समाधान नहीं होती। प्रेमी की मानसिक दशा में भाव की सकल्प विकल्प की संभावना रहती है। सच्चा प्रेमी इस झलक के बाद प्रिय के प्रति अत्यंत तीव्र भावावेग का अनुभव करता है। रत्नसेन की प्रेम साधना के अन्त गत हम यह स्थिति देखते हैं। गिवमंदिर में पद्यावती की झलक पाकर वह भावाकुल हो जाता है। उसकी प्रेमनिष्ठा बढ़ जाती है। वह बड़े से बड़े विघ्न पर जय प्राप्त करने के लिये दृढ़ निश्चय कर लेता है। इसी निश्चय के साथ वह सिंहलगढ़ में प्रवेश करने को उद्यत होता है।

‘बीधी स्थिति बिघ्नो की रात’ (Dark night) बही जाता है साधक को साध्य की आगिब अनुभूति की यह अवस्था अधिक समय तक नहीं रहती। अनेकानेक प्रकार की बाधाएँ साम में उपस्थित हो उसमें बिघ्न डालती हैं। गद्यवसेन द्वारा रत्नसेन का पकड़ा जाना बिघ्नो की रात है। जहां रत्नसेन को मानसिक संघर्ष करना पड़ता है।

पाँचवीं स्थिति पूण ऐक्य (Unitive State) की है। इस स्थिति में साधक साध्य से अभिन्न हो जाता है। साधक (प्रेमी) साध्य प्रियतम का मिलन हो जाता है। जायसी की पद्यावती भी सुहाग रात को इस पति मिलन की कल्पना कर रोमांचित हो कहती है —

‘अनचिह पिठ कापो मनभाहा । का प करव रहव जो बाहा ॥

वारि बस गई प्रीति न जानी । जुवा मई ममत भुलानी ॥

जोवन गरब न मैं किछु चेता । नेह कि जानी साबकि सेता ॥”

इस रोमांचित अवस्था के उपरांत पूण मिलन की स्थिति आती है। रत्नसेन का पद्यावती से मिलन पूणतादात्म्य (Unitive) की स्थिति है।

मिस इवालिन अउरहिल ने साधक (प्रेमी) की उपयुक्त पाँच स्थितियाँ बतायी हैं। यह स्थितियाँ ऐसी हैं जो समाधत सभी रहस्यवादी प्रेमी साधकों में लक्षित की जाती हैं। किंतु साधक एवं परिस्थिति भेद के अनुसार यह स्थितियाँ अधिक भी हो सकती हैं। साधक की मन स्थितियाँ पाँच ही हैं, ऐसा आवश्यक नहीं। पूण एकत्व की मन स्थिति प्राप्त करने तक अनेक

मानसिक स्थितियाँ हो सकती हैं।”^१

वस्तुतः प्रेमी साधक की मन स्थितिओं का अध्ययन अत्यन्त गठिन विषय है। उपयुक्त विवेचन रहस्यवादी साधना में निरूपित मानसिक विनाश की अवस्थाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। प्रिय की ओर उन्मुख होने की स्थिति से लेकर उसके व्यक्तित्व में लय होने की स्थिति तक जाने कितनी मानसिक दशाओं से साधक को गुजरना पड़ता है। भारतीय प्रेम-पद्धति में पूर्वाङ्गराग के अन्तर्गत ही सभी कामदशाओं का वर्णन किया गया है। यदि हम चाहें तो उन सभी दशाओं का अन्तर्भाव इसका अन्तर्गत कर सकते हैं। प्रिय से मिलने की अभिलाषा, चिन्ता स्मरण, जिज्ञासा, भय, लज्जा, स्वरूप विकल्प, स्वरूपामास, दिवास्वप्न, ओत्सुक्य आदि अनेक दशाएँ प्रेमी मन के साथ जुड़ी होती हैं। जायसी के प्रेम काव्य में ही यदि ‘रत्नसन’ और ‘पद्मावती’ हम दोनों पात्रों की प्रतिद्वन्द्व की मानसिक स्थितियों का विवरण प्रस्तुत किया जाय तो प्रमिया के मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी हो सकती है। यहाँ हम इतना ही कहना चाहेंगे कि प्रेमी साधक की जितनी भी मन स्थितियाँ क्यों न हों वह सब ‘प्रेम’ की ही द्वीय चेतना से नियन्त्रित होती हैं।

प्रेम का स्वरूप : आध्यात्मिक या लौकिक

महाकवि जायसी सूफी स त थे और सूफियों में ईश्वर की कल्पना 'प्रेम के रूप में ही की जाती है। 'पद्यावत' में जिस प्रेम की व्यजना की गयी है, उसके विषय में विद्वानों का मत है कि यह लौकिक प्रेम न होकर अलौकिक या आध्यात्मिक प्रेम है और राजा रत्नसेन और राज्ञी पद्यावती की प्रणय कथा लौकिक प्रणय कथा न होकर आत्मा और परमात्मा के मिलन की कथा है। कुछ विद्वानों का मत है कि 'पद्यावत' में कवि आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना करने में असफल रहा है। अतएव पद्यावत की कथा लौकिक प्रेमकथा ही है।

आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना- -लौकिक प्रेम वगण द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जायसी का पद्यावत एक प्रेमगाथा है पूरा जीवन गाथा नहीं। जायसी ऐकात्मिक प्रेम का गूढ़ता और गम्भीरता के बीच बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के सम्पर्क का स्वरूप कुछ दिखाने लगे हैं इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गयी है। पर है वह प्रेम गाथा ही पूरा जीवन गाथा नहीं। " पद्यावत का पूर्वादि प्रेम के विवरण से परिपूर्ण है और उसमें प्रेम भाव का जसा उत्कण्ठ दृष्टिगत होता है वह स्वयं में श्रेष्ठ एक महान है। पद्यावत में जिस प्रेम की व्यजना की गयी है उसके सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि यह लौकिक प्रेम न होकर अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रेम है। रत्नसेन और पद्यावती की कथा लौकिक प्रेम कथा न होकर जीवात्मा और

परमात्मा के मिलन की कथा है, जिसमें लौकिक प्रेम की व्यजना द्वारा आध्यात्मिक प्रेम व्यजना करना ही कवि का लक्ष्य रहा है । ' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि ' जायसी ने पद्यावत में जिस उद्दाम प्रेम का वर्णन किया है, वह आदर्श और ऐक्य तत्त्व प्रेम है । उसमें लोक मर्यादा का अतिप्रमण दोष नहीं, गुण समझा जाता है । यह प्रेम सोद्देश्य भी है । लौकिक प्रेम के बहाने कवि सदा अलौकिक सत्ता की ओर इंगारा करता रहता है ।' आचार्य गुप्त के अनुसार इस का यम एक प्रबन्ध के भीतर गुह्यभाव (रतिभाव) के स्वरूप का ऐसा उत्कृष्ट जो पाण्डित्य प्रतिबन्धों से पर होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखायी पड़े जायसी का मुख्य लक्ष्य है । ' डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है । उनके अनुसार इसमें ' जो प्रेम की व्याख्या की गयी है, उसमें जहाँ 'गरीर पक्ष की अवमानना कर सृष्टमत्ता की ओर कवि की लेखनी चल दनी है वहाँ ऐसा प्रतीत हान लगना है, कि मानो कवि आध्यात्मिक प्रेम की झाँकियाँ हमें दे रहा है ।' डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में भी जायसी ने अपने पद्यावत' की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यजना रखी है । सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धांतों की रूपरेखा है ।' कवि ने पद्यावत में प्रेम भाग उसका महत्त्व और प्रेम भाग की बाधाओं का स्थान स्थान पर वर्णन किया है । जिसका वर्णन हम परवर्ती परिच्छेदों में करेंगे । जायसी में आध्यात्मिक प्रेम की यह व्यजना हम तीन रूपों में प्राप्त होती है—(१) रूपक द्वारा (२) कथा प्रसंगों में अलौकिकता की ओर संकेत द्वारा और (३) सूफी मत के अनुकूल प्रेम की व्यजना द्वारा । यही क्रमशः इन पर विचार किया जा रहा है—

(१) रूपक द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना

'पद्यावत' में कवि ने रत्नसेन और पद्यावती की साधारण लौकिक कथा द्वारा आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन की व्यजना की है । रत्नसेन को साधक और पद्यावती को ईश्वर के रूप में चित्रित किया है और इस प्रकार बतलाया है कि रत्नसेन को पद्यावती तक पहुँचाने वाला प्रेम जीवात्मा

१ हिन्दी का यम का आलोक स्तम्भ—डा० धारि स्वर्ण गुप्त पृ० १४

२ मध्यकालीन धर्म साधना—आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २५५

३ जायसी पद्यावली—आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३०

४ हिन्दी प्रेमसाहित्य का यम—डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० ३८१

५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ० ३११

को परमात्मा तक पहुँचाने वाला प्रेम है । प्रेम अधिक रत्नसेन में सच्चे साधक भक्त का स्वरूप दिखाया गया है । इस अप्रस्तुत अर्थ की 'योजना के लिए कवि ने 'पदमावत' के अंत में एक साकेतिक सूत्र दे दिया है । जो इस प्रकार है--

तन चितउर मन राजा की हा ' हिय सिधल बुधियदमिनि चीहा ॥

गुरु सुधा जेइ पय देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।

नागमती यह दुनिया घषा । बाँचा सोइ न एहि चित बैषा ॥

राघव दूत सोइ सतानू । माया अलाउदी सुलतानू ॥

प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु । बूझि लेहु जो बूझ पारहु ॥'''

इस सूत्र के अनुसार तन रूपी वितौर गढ़ के मन रूपी राजा रत्नसेन की हियरूपी सिधल में पदिमनी ही ईश्वर से मिलाने वाली बुद्धि है जिसकी प्राप्ति का पय बताने वाला ही रामन शुक गुरु है । राघव चेतन शतान है जो प्रेम का उचित माग न बताकर मन का इतस्तत भ्रमित करता है । अलाउद्दीन माया का ही रूप है । अतएव भी कवि ने आध्यात्मिकता के इस आरोप की धोषणा की है--

'कहा मुहम्मद प्रेम कहानी । सुनि सो म्यानी भये म्यानी ॥ '

कवि की ये उक्तियाँ प्रमाणित करती हैं, कि उस अपने काव्य में आध्यात्मिक व्यञ्जना अभीष्ट है ।

(२) कथा प्रसंगों में अलौकिकता की व्यञ्जना

प्रारम्भ में ही यह कहा जा चुका है कि कथा के बीच-बीच में जायसी प्रेम की अलौकिकता की ओर भी इंगित करते चलते हैं । इस प्रकार के स्थलों में अधोलिखित का उल्लेख विशेष रूपेण किया गया है । जिसमें प्रेमकथा की अलौकिकता और आलौकिक प्रेम की 'योजना स्पष्टरूपेण उभर कर सामने आती है--

(क) घटनाएँ--

(१) हीरामन शुक के मुख से पदिमनी का रूप वणन और सदेश सुनकर रत्नसेन का मूर्छित हो जाना ।

(२) रत्नसेन की सिधल यात्रा ।

(३) रत्नसेन पदमावती मिलन ।

(ख) वणन—

(१) 'सिंघलगढ़ वणन' जिसमें पदमावती का निवास स्थान सातवें खण्ड पर बतलाया गया है ।

(ग) सवाद—

(१) 'सात समुद्र खण्ड' में राजा सुआ सवाद ।

(२) 'पदमावती रत्नसेन भेट खण्ड' में पदमावती तथा सखियों की वार्ता ।

इन प्रसंगों में से कुछ के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

“आवत जग बालक जस रोआ । उग्य रोइ ‘हा ज्ञान सो खोवा’ ॥

हौं तो अहा अमर पुर जहाँ । इहाँ मरनपुर आएउं वहाँ ॥

केइ उपकार मरन कर बीन्हा । सकति ह्वारि जीउ हरि लीहा ॥’

रत्नसेन के बेसुध हो जान पर ध्यान (मूर्छितावस्था) में उसे परम ज्योति के सामीप्य की जो आनन्दमयी अनुभूति हो रही थी, उपयुक्त पक्तियों में उसीका वणन है । रत्नसेन का पदिमनी के ध्यान में वसुध हो जाना वह कर यहाँ कवि ने साधक भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर सान्निध्य की सुन्दर अभिव्यजना की है ।

‘देखि मान सर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥

भा अधियार, रनि मसि छूटी । भा भिनसार किरिन रवि फूटी ॥’

इन पक्तियों में राजारत्नसेन के सातवें समुद्र में पहुँचने पर दुःख की सारी छाया का घट जाना, आनन्द का प्रसार होना, सूर्य किरण का उदय होना, कहकर साधक का अपनी साधना के फल के निकट पहुँचना, तत्क्षण सारे सतापो और भ्रमों का दूर हो जाना और आत्मा का अपनी शुद्ध स्वरूप की ओर अप्रसर होना व्यजित हुआ है । इनसे यह पूरणरूपेण प्रमाणित होता है कि जायसी की प्रेम कथा में अलौकिक प्रेम की ही व्यजना है लौकिक प्रेम की नहीं ।

(३) सूफीमत के अनुकूल प्रेम व्यजना

सूफीमत अवविश्वास प्रधान शुष्क इस्लाम धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुआ था । इस्लाम धर्म की बौद्धिकता के बंधन से अलग भावुक सूफियों ने एक ऐसे मत की प्रतिष्ठा की थी जिसमें अलौकिक भक्ति के साथ साथ लौकिक रति को भी महत्व प्रदान किया गया । किञ्चित्काल पश्चात् लौकिक

रति के ही प्रति इनका लगाव रह गया और अलौकिक रति की भावना नाम मात्र को गेय रह गयी । रति भावना का सम्बन्ध सौन्दर्य और प्रेम से है । अतएव सूफीमत में ईश्वर (हक) की नल्पना या तो सौन्दर्य के रूप में की गयी या प्रेम के रूप में । जायसी में इन दोनों रूपों का पूरा पूरा प्रभाव दिखायी पड़ता है । जिस सुविधा के लिए दो रूपों में रखकर देखा जा सकता है—(१) लौकिक सौन्दर्य वर्णन द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यञ्जना, और (२) प्रेम और विरह का व्यापक वर्णन ।

(१) लौकिक सौन्दर्य वर्णन द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यञ्जना

रूप सौन्दर्य ही सारी आध्यात्मिका का आधार है । अतएव जायसी ने पदमावती के रूप का बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है । यहाँ भी कवि लौकिक सौन्दर्य का चित्रण करते करते अलौकिक सौन्दर्य की ओर बढ़ जाता है । सूफी भावना के अनुसार जायसी का सौन्दर्य चित्रण प्रायः अलौकिक ही है । जायसी का समस्त नैकगुण वर्णन अपना आध्यात्मिक अर्थ रखता है और इस रूप में प्रेम का मूलधार यह अलौकिक रूप वर्णन जायसी की आध्यात्मिक प्रेम व्यञ्जना को स्पष्टतः प्रकट करता है । जिस प्रकार राजा रत्नसेन राणी पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य पर मुग्ध होना है, उसी प्रकार भक्त हृन्म भी परमात्मा के सौन्दर्य पर मोहित होता है । रत्नसेन की मुग्धावस्था का चित्रण भी कवि ने उसी रूप में किया है जिस प्रकार ब्रह्म के साक्षात्कार की स्थिति में भक्त की दशा होती है । पदमावती में पदमावती ईश्वर का प्रतिरूप है । उसका सौन्दर्य अपरिमेय है अलौकिक है और दिव्य है जिससे वर्णनमात्र से राजा की यह दशा हो जाती है

सुनतहि राजा गा मुरझाई । जानौ लहरि मुरुज क आई ॥^१

कवि ने इस अलौकिक रूप के साक्षात्कार की अनुभूति को जिस रूप में चित्रित किया है वह भी ब्रह्म साक्षात्कार की अनुभूति से मेल खाती है और पाठको को सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न करने वाली है ।

सौन्दर्य की लोकोत्तर खोज करने के लिए जायसी ने इस प्रकार के उपमानों को ग्रहण किया है जहाँ तो सौन्दर्य की ओर सवेत करते हैं । निम्नान्वित पक्तियों में पदमावती के रूप वर्णन में सौन्दर्य की यह लोकोत्तरता द्रष्टव्य है—
कचन रस कसौटी वसी । जनु छन मह दामिनि परगसी ॥^२

जायसी के सौन्दर्य वर्णन की एक अथ विशेषता है सौन्दर्य के सट्टिधायी प्रभाव की कल्पना जिससे उसकी लोकोत्तरता प्रमाणित होती है । पद्मावती के चेहरे की कालिमा के प्रभाव से स्वर्ग और पाताल में तिमिर छा जाता है । उसके नेत्रों की पुतलियों के झोलने से ससार झोलने लगता है और उसके मदमृदु हास से दुःख उज्ज्वल गोभा अनेक रूप धारण करके सरोवर के मध्य में फल जाती है—

‘नेनी छोटि झार जो वारा । सरग पतार होइ अधियारा ॥’

+ + +

‘नैन जो नेने कवल भये निरगर नीर सरीर ।

हसत जो देने हस भए दसन जोनि नगहीर ॥’

पद्मावती के इस सौन्दर्य में एक विशिष्ट पवित्रता है एक अलौकिक आनन्द विधायक विशेषता है जिसके साक्षात्कार मात्र से अज्ञान का अन्धकार अदृश्य हो जाता है । जन्म जन्मांतर के पाप धुल जाते हैं ।

एक अन्य स्थान पर जायसी कहते हैं कि दीप्त पढ़ने वाली, उग्र परम ज्योतिस्वरूप पद्मावती की ज्योति स ही जगत् में नील पढ़ने वाली ज्योतिर्मा निर्मित हुई है । पद्मावती के दाँतों की ज्योति से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, रत्न, हीरे, माणिक्य, मोती आदि ज्योतिर्मय पदार्थों ने ज्योति प्राप्त की है ।

“जेहि दिन दसन जोति निरमई । बहुत ह जोति जोति ओहि भई ॥

रवि ससि नखत दीह ओहि जोती । रत्न पदारथ मानिक मोती ॥

जह जह बिहसि सुभार्वाह हसी । तह तह छिगकि जोति परगसी ॥”

इसी प्रकार चन्द्र और सूर्य पद्मावती के ललाट की चमक के कारण निमग्न हैं—

“ससि ओ सूर जो निरमल सेहि ललाट की ओप ।”

इसकी नासिका की सुगंध से ही पुष्प सुगंधित हो जाते हैं—

अस यह फूल सुवासित भयउ नासिका बध ।

जेत फूल ओहि हिरकहि तिह कह होइ सुगंध ॥

१ जायसी प्रभावली—पृ० ४१

२ पद्मावत—वासुदेवचरण अग्रवाल सदन चिरगाँव, छाँसी पृ० ७५

३ पद्मावत—वासुदेव चरण अग्रवाल—पृ० १२१

४ वही पृ० ५९६

५ जायसी प्रभावली—पृ० २१३

परमात्मा को परमसत्य, परमसत्ता मानने के अतिरिक्त सूफी यह भी मानते हैं कि वह परम कल्याण और परम सौन्दर्य है। सूफी कहते हैं कि वह सष्टि दण्ड सदश है जिसमें उस परम सौन्दर्य के गुण प्रतिबिम्बित होते हैं। फारसी के प्रसिद्ध सूफी कवि जामी की कविता में यह बात अत्यन्त सुन्दर ढंग से कही गयी है। जामी की कविता में कहा गया है कि तुम परम सत्ता हो और सभी कुछ मरीचिका मात्र है क्योंकि तुम्हारी सष्टि में सभी वस्तुएँ एक हैं। सम्पूर्ण सष्टि को भुग्न करने वाला तुम्हारा सौन्दर्य अपनी पूर्णता को प्रकाशित करने के लिये, हजारों दण्डों प्रतिभासित होता है। लेकिन वह (सौन्दर्य) एक ही है।^१ पद्मावती के इसी रूप का वर्णन जायसी निम्नांकित पक्तियों में करते हैं—

कहा मानसर चहा मो पाई । पारस रूप इहा लबि आई ॥

भा निश्चर त ह पायन परस । पावा रूप रूप के दरस ॥

मल समीर वास तन आई । भा सीतर म तपा बुसाई ॥

+ + + +

बिगसे कुमुद देखि ससि दखा । मैं तहि रूप जहाँ जो देखा ॥

पाये रूप रूप जह चह । ससिमुख सब तरपन होइ रह ॥

नन जो देखे बबल मए निरभर नीर सरीर ।

हसत जो देख हस मए दसन जाति मगहीर ॥^२

उपयुक्त पक्तियों में कवि ने विम्ब प्रतिबिम्ब भाव का अत्यन्त सुन्दर निदर्शन किया है। पद्मावती विम्ब है उसीका प्रतिबिम्ब जगत है अर्थात् उसीकी प्रतिच्छाया में ससार का अर्थ सब रूप बन हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौन्दर्य के लोकोत्तर व्यञ्जनाथ जायसी ने जो उपमान प्रस्तुत किये हैं वे लोकोत्तर दिव्य सौन्दर्य की ओर इंगित करते हैं।

(२) प्रेम और विरह का व्यापक वर्णन

सौन्दर्य की यही लोकोत्तर भावना प्रेम का मूलधार है। इसीलिए सूफियों ने प्रेम को अधिक महत्ता प्रदान की है। उनका कहना है कि प्रेम हृदय की मांग है। वह पूर्णत्व की प्राप्ति का मधुर सन्धान है। हृदय को एक ऐसे परम

१ सूफीमत साधना और साहित्य डा० रामपूजन तिवारी, पृ० २५१ पर उद्धृत।

२ पद्मावत पृ० ७४।

हृदय और व्यक्ति को एक ऐसे परम व्यक्ति की जरूरत महसूस होती है जिसके ससग में वह उस सीमा में आ जाना चाहता है कि वह अपने और अपने प्रेम के आश्रय के मध्य किसी दूसरे की उपस्थिति को सवया अस्वीकार कर देता है। सूफिया को प्रियतम के गल का हार भी असह्य है। ऐसी दशा में अपने और प्रियतम के बीच किसी मध्यस्थ को व कस बढास्त कर सकते हैं ? इस दशा में बाहर भीतर सबत्र उसे प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। उसकी प्रवृत्ति सबकी उपेक्षा करके स्वच्छन्द रूप से प्रियतम में ही एकाग्र भाव से सन्निविष्ट हो जाती है। इस प्रकार समस्त मानवीय मूल प्रवृत्तियों में काम अर्थात् रतिभाव सर्वाधिक व्यापक एक महत्त्वपूर्ण है। रति और प्रीति नाम की दो भार्याएँ हैं।^१ जो त्रमश गारौरिक सुख और मानसिक परितृप्ति की विधायिका हैं। इससे स्पष्ट है कि रति में 'स्व सुखीभाव' की तीव्रता होती है किन्तु प्रीति में 'त सुखीभाव' की प्रधानता रहती है। तात्पर्य यह है कि कामवासना ही परिप्लुत हाकर प्रेम के प्राणोत्पादक मनो हर पुष्प के रूप में विकसित हो जाती है।^२ सूफियों के अनुसार यह प्रेम विरह विशिष्ट होता है। जायसी के प्रेम और विरह में इ ही व्यापक रूपों की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम का यह वर्णन दशनीय है—

सुनु घनि ! प्रेम सुरा कं पिए । मरन जियन उर रहै न हिए ।

 + + + +

सो प जान पिय जो कोई । पीन अघाइ जाइ परि सोई ॥

रातिहु दिवस रहै रस भीजा । लाभ न देख न देख छोजा ॥^३

इस प्रेम से छक कर वह जगत की ओर कुछ नहीं देखता। जब देखता है तब उसी परम प्रियतम को—

परगट गुपुत सकल मह पूरी रहा सो नाव ।

जह देखो तह ओही दूसर नाहि जह जाव ॥

सूफी मत में अह भाव को साधक के लिए सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है और उस पर विजय पाने की बात कहा गयी है। जिससे दूर और मैं का भाव समाप्त हो जाय—

हो ही बहुत सबे मति खाइ । जो तू नाहि चाहि सब कोई ॥

१ 'कामस्य द्वे भार्ये रतिश्च प्रीतिश्च—

२ वही

३ जायसी ग्रंथावली पृ० १४१ ।

४ वही, पृ० १०५ ।

आपुहि गुरू सो आपुहि चेला । आपुहि सब ओ आपु अनेला ॥ ^१

इसके लिए प्रेम ही एकमात्र साधन है । जायसी कहते हैं कि तीनो लोक और चौदहा भुवन में प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी मुन्दर नहीं है—

तीनि लोक चीन्ह सड सब पर मोहि सूझि ।

प्रेम छाडि किछ और न सोना जो देखी बूझि ॥^२

यह प्रेम का खेल अत्यन्त कठिन और दुःखदायी होता है लेकिन जो इस खेल को खेल सता है वह दोनों लोकों में तर जाता है—

“मलेहि प्रेम है कठिन दुहला । दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला ॥”^३

इस प्रेम के द्वार ही वह ऐसे लोक को प्राप्त कर सकता है जहाँ न मृत्यु है न दुःख—

तिह पावा उत्तिम कविलासु । जहा न मीचु सदा सुख ताम् ॥^४

जायसी की निम्नलिखित पंक्ति में कहा गया है कि दुःख के भीतर ही प्रेम का मधु है । जो दुःख और मरण को सहता है, वही उसका रसास्वादन कर सकता है—

दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा । गजन मरन सहै सो चाखा ॥^५

कबीर की अधोलिखित पंक्तियों से इसकी तुलना की जा सकती है । कबीर कहते हैं—

कबीर हसणा दूरि करि करि रोवण सा चित्त ।

बिनु रोयां क्यू पाइए प्रेम पियारा मित्र ॥^६

विरह को भी जायसी ने इसी रूप में चित्रित किया है । जायसी के अनुसार प्रेम में अपार विरह होता है । उसके ताप से स्वयं और पाताल भी जलते हैं । सूर्य विरहाग्नि में जल कर ही काप रहा है । और अहर्निश जलता रहता नक्षत्र और तारिकायें भी उसी की विरहाग्नि में विदग्ध होती हैं—

‘विरह की आगि सूर जरि बापा । रातिहि दिवस जर ओहि तापा ।

सिनहि सरग सिन जाइ पतारा । थिर न रहै एहि आगि अपारा ॥’

१ जायसी प्रयावली पृ० ९३ ।

२ वही पृ० ३९ ।

३ वही पृ० ४० ।

४ वही, पृ० ६२ ।

५ वही, पृ० ४० ।

६ कबीर प्रयावली, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७ ।

७ जायसी प्रयावली, पृ० ७८ ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी के विरह के विषय में लिखते हैं कि—
'जायसी का विरह वगन कही वही अत्यन्त अत्युत्तिष्ठ होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है। उसमें गाम्भीर्य बना हुआ है। इसकी अत्युत्तिष्ठता की वरामात नहीं जान पड़ता, हृदय की अत्यन्त तीव्र वेदना के शब्द संकेत प्रतीक होती है।'^१

सूफियों का विश्वास है कि भगवान् ही प्रेम है और अपन आनन्द के लिए वह उसे मानव मानस में उत्पन्न करता है। अपने प्रेमियों में अपने ही लिए वह प्रेम को परोहर का तरह रख छोड़ता है। इस प्रेम को प्राप्त कर प्रेमी और प्रमास्पद दोनों ही मनुष्य हान हैं। प्रेम के माध्यम से प्रेमी साधक के हृदय की वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं और उनके अन्तर्द्व द्व समाप्त हो जाते हैं। वह अपने भाग में अग्रसर होता है और उसे परमात्मा के दगन हो जाते हैं। उस समय उसके प्रेम की 'याकुलता' चरम सीमा पर पहुँच जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी साधना का आदि भी प्रेम में ही होता है और उसकी परिणति भी प्रेम में ही होती है। इस प्रेम में विरह की वेदना और प्रेम का आनन्द भी ग्राह्य बन रहा है। सूफियों के प्रेम की पीर यही है। जायसी ने बराबर इस विरह और प्रेम के पीर की चर्चा की है। यह विरह और पीर सूफी साधकों का सम्बन्ध है। वे मानते हैं कि परमात्मा से मिलन की यह 'याकुलता' समस्त प्रकृति में परिग्राह्य है।

'प्रेमहि माह विरह बी रसा । मैं के घर मधु अमृत बसा ।'^२

जिस प्रकार मधुमन्थी के छत्ते में सहद और मक्खी दोनों ही होते हैं उसी प्रकार परमात्मा के प्रेम में आनन्द और माधुर्य दोनों ही हैं। सदैव विरह-व्याकुलता तथा मिलन की उत्कट अभिलाषा भी है। रत्नसेन की दशा का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं—

जेहि क हिये पेम रग जाया । का तेहि भूख नीद विसराया ॥

वन अधियार रनि अधियारी । भाग्य विरह मण्ड अति भारी ॥^३

साथ ही प्रेमी को विरह के त्राप से जलते हुए आज्ञाय उस प्रेम का निर्वाह करना होता है उसने लिए भी और भय नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती। उसे मृत दुःख की परवाह नहीं होती है। जायसी कहते हैं—

१ जायसी प्रभावली भूमिका भाग १० ३६।

२ वही १० ७१।

३ जायसी प्रभावली, पृ० ५८।

‘कठिन वियोग जोग दुख दादू । जरतहि मरतहि और निवाहू ।

डर लज्जा तह दुआ गवानी । देख नछु न आगि नहीं पानी ॥’^१

इस प्रकार जायसी न जागतिक समस्त व्यापारों को प्रेम के आध्यात्मिक स्वरूप की छाया के समान ही दिखाया है । वियोग पक्ष में भी वही वियोग अलौकिक रूप में सृष्टि व्यापी प्रभाव के साथ चित्रित किया गया है । विरह के शुद्ध भाव लोक में अग्नि पवन इत्यादि सब उस प्रिय (ईश्वर) तक पहुँचने के लिए ‘यत्न दिखायी पड़ते हैं । सारी सृष्टि उसी परम तत्त्व में लीन हान के लिए विह्वल रहती है और अन्ततः उसी में विलीन हो जाती है ।

जायसी की आध्यात्मिक प्रेम व्यञ्जना का मूल्यांकन

जिन तीन रूपों—रूपक द्वारा, कथा प्रसंगों में अलौकिकता की ओर संकेत द्वारा और सूफी मत के अनुकूल प्रेम व्यञ्जना द्वारा—क माध्यम से जायसी ने अलौकिक प्रेम की व्यञ्जना की है पदमावत के सम्पूर्ण प्रेम वणनों में आध्यात्मिकता का आरोप नहीं किया जा सकता । जायसी ने जो रूपक कोश दिया है, वह पदमावत की कथा पर पूर्णरूपण खरिताय नहीं होता है क्योंकि पद्मावती (बुद्धि का) और नागमती (दुनियाँ धरा का) विरोधी प्रवृत्तियों का प्रतीक हान पर भी अन्त में दोनों ही रत्नसन के साथ बिता में जल कर भस्म हो जाती हैं । पदमावती को परमात्मा मानन पर कथा में अधिकांश प्रसंग अनुपयुक्त लगने लगते हैं । जहाँ तक कथा प्रसंगों के मध्य में अलौकिकता के संकेत का प्रश्न है, वे प्रसंग पदमावत के पूर्वार्द्ध के ही हैं । उत्तरार्द्ध से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है । प्रेम और विरह का व्यापक वणन तथा लौकिक सौन्दर्य वणन द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यञ्जना भी आश्विक रूप में ही हुई है । नागमती के विरह वणन तथा संयोग भ्रंगार के अनेक प्रसंगों में अलौकिकता की छाया भी नहीं प्राप्त होती है । इस सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा का कथन महत्वपूर्ण है । जायसी ने अपने पदमावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यञ्जना रखी है पर जायसी इस आध्यात्मिक संकेत को पूर्ण रूप से नहीं निवाह सके और अधिकांश में ‘पदमावत में चित्रित प्रेम का स्वरूप अलौकिक न होकर लौकिक हो गया है ।’^२

‘पदमावत में चित्रित प्रेम की लौकिकता का निदर्शन प्रस्तुत करने के

१ जायसी प्रयागवली पृ० ६० ।

२ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास रामकुमार वर्मा

लिए उसके कुछ स्थलों की ओर संकेत करना पर्याप्त होगा। जहाँ तक प्रारम्भ में प्रेम के अनुभूति का प्रश्न है वह लोकोत्तर लगती है परन्तु उसके बाद पद्मावती रत्नसेन के मिलन प्रसंगों से लेकर अंत तक प्रेम का जो स्वरूप दिखाया गया है वह लौकिक प्रेम से भिन्न नहीं है। पारसी शैली और भाव भगिमाओं के प्रभाव से प्रेम प्रसंगों में कवि ने वासना के विविध चित्र अंकित किये हैं और कहीं कहीं तो उसकी लेखनी शृंगार के अत्यधिक विलासमय वृत्त प्रस्तुत करती है। एक चित्र द्रष्टव्य है—

‘तस होइ मिले पुन्य भी गोरी । जस बिछुरी सांगत जोरी ॥
गची सारि दूनी इक मामा । होइ जुग जुग आवहि बिलासा ॥
पिय धनि गही दीह गलवाही । धनि बिछरी लागी उमराहीं ॥
स छवि नवरस बेलि बगही । लोका लाइ अघर रस लेही ॥’

इस चित्र में वर्णित प्रेम लौकिक प्रेम के चित्र से किसी भी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता। पद्मावती युवावस्था को प्राप्त होने ही सीते से कहती है—

“मुनि हीरामन कहीं बुझाई । दिन दिन मत्न सतावै आई ॥
जोवन मोर भयज जस गगा । देह देह हम लोग अनगा ॥’

रत्नसेन के सिधलग्न में पहुँचने के पश्चात् भी पद्मावती को कामवासना एवं योग लिप्ता में विह्वल युवती के रूप में दिखाया गया है। उससे स्पष्ट है कि पद्मावती का प्रेम सवथा लौकिक स्तर का है। उसी को देखते हुये डॉ० विमल कुमार जन न लिखा है। पद्मावती की क्या भी नखलित्र वृत्त प्रेमावेग तथा ऐसी ही अर्थ बातों का वर्णन है उसमें आध्यात्मिक पक्ष को कुछ घषका सा लगता प्रतीत होता है।^१ इस प्रकार जायसी के सयोग वृत्त में यदि शारीरिक उन्लास का मादक वृत्त आध्यात्मिक प्रेम को आपात पहुँचाता है तो उनका विमोचन भी (विशेषतः नागमती का विरह चित्रण) इतना लौकिक और मानवीय है कि उसे आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता। डॉ० रामकुमार वर्मा के गद्या में “इतना कि तो ठीक है कि रत्नसेन और पद्मावती का मिलन होता है जहाँ तक कि गुन और बंदे का एकीकरण है पर जहाँ रत्नसेन और पद्मावती के अश्लीलता की सीमा को

१ जायसी प्रयावली पृ० १४०।

२ वही पृ० २१।

३ हिन्दी प्रमाणानुसंध काव्य डॉ० विमलकुमार जन, पृ० २८१

स्पष्ट करता हुआ शृंगार वर्णन है, वहाँ आभ्यात्मिकता को किस प्रकार घटित किया जा सकता है।^१ अतएव जिस प्रकार सागर की एक दो लहरें पूरे सागर का प्रतिनिधित्व नहीं करती उसी प्रकार, कुछ प्रसंगों में अलौकिक प्रेम की 'व्यञ्जना होने पर भी पचावत' को अलौकिक प्रेमकाय नहीं कहा जा सकता। वह लौकिक प्रेमकाय नहीं कहा जा सकता। वह लौकिक प्रेम काय ही है। आगे जायसी की लौकिक प्रेम व्यञ्जना के विवेचन से इस कथन की पुष्टि स्वयमेव हो जायगी।

जायसी के प्रेम चित्रण को लौकिक मान लें पर भी उसका महत्त्व कम नहीं होता। यह अपने लौकिक रूप में भी प्रेमी में त्याग एवं उत्सर्ग का भाव जगाने वाला है। यह उत्कट प्रेम प्रेमी को न जीने देता है न मरने देता है—

कठिन मरने से प्रेम विवस्था। ना जिय जिये न दसय अवस्था ॥^२

कबीर ने भी इसी प्रेम के लिए कहा—

प्रेम छिपाया ना छिर जा घट परगट हाय।

जो प भरव बाल नहीं नन देत हैं रोय ॥^३

यही प्रेम रत्नसेन का है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रेम कामजनित है परन्तु कामजनित होने पर भी प्रेम में इतनी तीव्रता असाधारण वस्तु है। एक स्त्री के लिए माता के ममतापाश को अपरिपक्व घावे की भाँति तोड़कर इत स्तन बन-बन में भटकना सात समुद्र पार कर जाना हिंसा शास्त्र के बल पर नहीं प्रयुक्त अहिंसा और प्रेम के अस्त्र के बल पर अपरिचित देश में जाकर स्पष्ट कहना कि—

‘पचावन राजा की बारा। हौं जोगी ताहि लागि मिसारी’^४

रत्नसेन का वर्षा आंतर एवं गीत का अनुभव करते हुए प्रेम में योगी बनकर सारे राजकीय सुखों का परित्याग करना अपने आप में महत्त्व रखता है। वह लौकिक प्रेमी धन्य है जिसका प्रेम इस प्रकार का है।

इस प्रकार के प्रेम का उद्देश्य, जायसी की दृष्टि में दो जीवनो का एकीकरण है। यह एकीकरण उद्वाह की सत्या द्वारा सम्पन्न किया जाता है

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा

पृ० ३११।

२ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४९

३ कबीर ग्रन्थावली पृ० ३०

४ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९४

परंतु उदाह का कोई भी प्रभाव इस प्रेम पर नहीं पड़ता । पद्मावती विवाह पूर्व ही रत्नसेन की गूली का समाचार सुनकर सदेन सम्प्रपित करती है कि 'यदि तुम जीवित रहोगे तो मैं भी तरे सा जीवन धारण करूँगी और यदि तुम न रहे तो मैं भी नहीं रहूँगी । मैं अपने प्राणा का हथेली पर लिय प्रतीक्षा कर रही हूँ—

'काढ़ि प्राण बढी देह हाथा । मरे तो मरौं जिअो एक साथी ॥'^१

इतना ही नहीं प्रत्युत् विवाहापरा त भी वह लक्ष्मी स कहती है कि तुम मुझे उसी घाट की ओर प्रवाहित कर दो, जहाँ पर मेरे प्रियतम हैं । मेरे लिये तुम अग्नि प्रज्वलित कर दो । मैं जलकर मर जाना चाहती हूँ । सारस की ओड़ी बिछुड़ कर कदापि जीवित नहीं रह सकती—

"बाज्रि होइ परी पुनि पारा । देहु बहाइ कत जेहि धारा ।

को मोहि आगि देइ रचि हारी । जियत न बिछुर सारस ओरी ॥'^२

रत्नसेन के बड़ी बन जाने पर वह गोरा-बादल से कितने विनय स्वर में कहती है कि दुख का वन ऐसा बड़ गया है कि रोके नहीं दकना । उसकी जड़ पाताल, मैं और गालाएँ आकाशगामी हो गयी हैं । उसकी छाया सारी पृथ्वी पर फैल गया है । विरह ही बलि खजूर जसी ऊँची हो गयी है । जायसी कहते हैं—

'दुख घरला अब रहे न राखा । मूल पतार, सरग भद साखा ॥

छाया रक्षा सबल महि पूरी । विरह बलि भद बाढि खजुरी ॥'^३

सूय को ग्रहण न ग्रम लिया है । अर कमल क्या कर । मैं भी वही जाऊँगी जहाँ प्रियतम गये हैं—

मूरज गहन करासा कैंवलन बैठ पात्र ।

भू पथ तेहि गवनव कत गय जेहि बाट ॥'^४

और जिस प्रकार जलने हुए लाक्षाग्रह में साहस करके भाग प्रविष्ट हुय थे और प्रविष्ट होकर—हान रक्षा की थी तुम भी वसा ही रखा—

जग जरत सखा घर माहम कीटा नाउ ।

जरत सम्म तस काउदु क पुष्पारय जाउ ॥'^५

१ जायसी प्र यावली पृ० ११३

२ वही, पृ० १७७

३ वही, पृ० २८०

४ वही पृ० २८०

५ वही, पृ० २८१

विवाहोपरांत रत्नसेन लक्ष्मी के छल पर कहता है कि मैं भ्रमर हूँ मालती पुष्प को गंध से ही पहचान लेता हूँ—

‘मैं हों सोइ भवर औ भोजू । लेत फिरी मालित कर खोजू ॥’^१

तुम क्या रदन कर रही हो । तुमसे वह रूप तो है परंतु गंध तो नहीं है—

‘का तुइ नारि बठि अस रोई । फूलसोइ पै वास न सोई ॥’^२

और मैं तो सुगंध पर मरन वालों में हूँ । किसी दूसरे पुष्प की ईहा ही नहीं रखता—

‘हौं ओहि वास जीउ बलि दऊ । और फूल क वास न लेऊ ॥’^३

विवाह के पूर्व भी उसने पावती से कहा था कि अक्सरे ! माना कि तुम्हारा रूप अतीव रमणीय है किंतु मुझ तो दूसरे से वार्ता भी अच्छी नहीं लगती—

‘मलेहि रंग अछरी तौर राता । ओहि दुसर सो भाव न वाता ॥

मैं स्वर्ग की भी कामना नहीं करता । मैं जिसके लिए मरता हूँ वही मेरे लिये स्वर्ग है—

‘हौं कविलास काह क करऊ ? साइ कविलास लागि जेहि मरऊ ॥’^४

इससे पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि प्रेम की तीव्रता पर विवाह का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा । उसकी शिक्षा गूँथवत अलग ही रही है और प्रेमी तथा प्रेमिका एक अनन्य भाव से परस्पर प्रेम कर रहे हैं ।

यह प्रेम एकांतिक है । इसका लक्ष्य भी प्रेम ही है कुछ और नहीं । यह दो ‘वक्तियों का एक कर देने वाला प्रेम है । यह अनन्य प्रेम है । यह इनमा सरकट और गहन है कि प्रेमी को जीवन के सारे सदर्भों से बाट देता है । एकांतिकता इसका गुण है दाप नहीं ।

प्रेम की इसी अनन्यता का वर्णन जायसी ने किया है । रत्नसेन कहता है कि जिसका मन जिसमें बसता है वह उसी का आश्रय ग्रहण करता है । स्वर्ग और सुहागा मिलकर एक—दूसरे से अलग नहीं हाते बरन तद्रूप हो जाते हैं—

१ जायसी ग्रंथावली, पृ० १८३

२ वही, पृ० १८३

३ वही पृ० १८३

४ वही, पृ० ९१

५ वही पृ० ९१

प्रेम पथ में इस प्रेम में और नायिकारव्य प्रेम में कोई अंतर नहीं है । दोनों प्रेम समान स्तर पर रखे गये हैं । नागमती से रत्नसेन कहता है—

‘नागमती तू पहिल विआही । कठिन विछोह दहै अनुदाही ॥

बहुत दिन मैं आव जो पीऊ । घनि न मिल घनि पाहुन जीऊ ॥’^१

इसको म प्रेम की प्रगाढता नहीं मानता । कारण कि अग्रज अनुरक्त नायक यदि अपनी पत्नी को इस प्रकार की उत्तियो से सतुष्ट करना चाहता है और अपनी कामना की सति चाहता है तो वह प्रेम नहीं है । एकमात्र ‘याज’ है । रत्नसेन के कथन से ज्ञात होता है कि वह किसी अशेष बाला को फुलवा रहा है । हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक उदाहिता नारी विवग प्यार देती है और प्रत्येक उदासित पुरुष विवग प्यार पाता है । निभल प्यार केवल वही नारी दे सकती है जो प्रयसी होती है । जो कुछ भी हो नागमती का सारा रोष समाप्त हो जाता है और नागमती हसि पृथी बताता ।^२

इस प्रकार नायक और प्रतिनायिका के प्रेम को निम्नस्तरीय प्रेम नहीं माना गया है । हाँ, यह अवश्य है कि उनमें सघष को स्थान भी नहीं दिया गया है । इस प्रकार से वह पाठक के मन पर अपनी उज्ज्वल आभा विकीर्ण नहीं कर पाता जो कि नायिकारव्य प्रेम डालता है ।

जायसी न प्रतिनायक द्वारा नायिका के प्रति प्रेम प्रकट करने और उसे प्राप्त करने की चेष्टा का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । अलाउद्दीन का पद्यावती को प्राप्त करने का प्रयत्न ऐसा ही है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल न प्रतिनायक (अलाउद्दीन) के प्रेम को रूप लोभ की सजा दी है । इसके विपक्ष में (क) पद्यावती का परविवाहिता होना तथा (ख) अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना—ये दो अनुचित काय बताये हैं । जिनके कारण उसके ‘प्रेम’ को प्रेम नहीं कहा जा सकता । डा० माताप्रसाद गुप्त ने स्व सम्पादित पद्यावत में इन दोनों अनौचित्यों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया है कि ‘भारत में इन दोनों भावनाओं को अनुचित समझते हुए भी सामान्यतः सूफी भाषना से ये विरुद्ध नहीं पड़ती ।’ उनके विचार में सूफी साधना का चरमादेश्य विरहानुभूति है । उसके अभाव में अलाउद्दीन को भी प्रेमी का स्थान प्रदान नहीं किया जा सकता । इन सूफी कवियों की दृष्टि

१ जायसी पद्यावली पृ० १८९

२ वही पृ० १९०

३ वही, पृ० ३३ (भूमिका भाग)

४ पद्यावत डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० ४६-४९

मे जब तक कोई भी प्रेम का दम भरने वाला दुरा की बाँवरी नहीं ढोना और दोनों जगत के मुख 'उस दुःख पर' धोछाकर बरन की प्रस्तुत नहीं होता, वह प्रेमी नहीं है। रूप लोभी है। लम्बी है। छली है। अलाउद्दीन यही है और इसीलिए रत्नमन से मित्र है।^१

डा० माताप्रसाद का यह समाधान साम्प्रदायिक माना जा सकता है परन्तु सम्पूर्ण प्रेमाभ्यास का आधार की पद्धति में आचार्य गुबल का दोनों विचार सचल है। प्रेम माग अहिंसा का माग है। छल बगट अथवा धमन्य का भाव इसकी पवित्रता समाप्त कर देता है। प्रतिनायक का स्वत्व अहिंसा माग की न अंगना के कारण है। उस पर प्रेम में केवल ग्रहण का आग्रह है त्याग का नहीं। प्रतिनायक और प्रतिनायिका के बीच जिस प्रेम का विकास जायसी करते हैं वह दूसरे प्रकार का है। जिस पद्मावती को रत्नसेन ने योगी का वेग धारण कर सात सात समुद्र को पार कर जीवन की यात्री लगाकर प्राप्त करने में मयलता प्राप्त की थी, उसी पद्मावती को अलाउद्दीन तलवार के जोर से प्राप्त करना चाहता है। अलाउद्दीन का दूत कहता है—

बोलु न राजा । आय जनाई । लीह दबगिरि और छिताई ॥^२

उसका मुनकर रत्नमन के मत्पु की सीमा नहीं रहती। परन्तु अब अलाउद्दीन विनय के स्वर में सधि क निमित्त कहता है तो रत्नसेन इस दुःख का भक्ति की अपने प्रसाद में ठहरा लेता है और दण्ड में पद्मावती का प्रतिबिम्ब दिवाने के लिये सहमत हो जाता है। प्रतिनायक के हृदय में नायिका के लिये वह प्रेम नहीं रहना जो परम त्याग एवं कष्ट सहिष्णुता में परिपूर्ण हो। उसमें प्रेमी तलवार द्वारा हृदय जीतने का प्रयत्न करता है। जो सफलीभूत नहीं हो सकता है। यह प्रेम नहीं है। सच्चे प्रेम में तो अहिंसा योग विनय सीलता आदि का विशेष महत्व है। जिसका स्पष्टीकरण प्रतिनायक और नायिका के प्रेम द्वारा कवि न कर दिया।

वस्तुतः प्रतिनायक के प्रेम का विषय नायक के प्रेम को उत्कथ देने का एक माध्यम है। प्रतिनायक के आचरण के अनौचित्य को देखकर नायक के आचरण की उच्चता का बोध होता है। अतः पद्मावत में अलाउद्दीन का प्रेम जो निश्चय ही रूप लोभ है रत्नसेन के प्रेम की दिव्यता उज्ज्वलता और

१ पद्मावत डा० माताप्रसाद मुक्त पृ० ४९

२ पद्मावत पृ० २१९

जनहुँ छाँह मह घूप देखाई । तसह झारि लागि जो आई ।
सही न जाइ सबति क झारा । दुसरे मंदिर दोह उतारा ॥^१

और एक दिन—

‘बह ओहि बह बह ओहि कह महा । कहाँ तस जाइ न कहा ।
दुवो नवल भारी जीवन गाज । अछरी जनहु अखारै बाजै ।
भा बाहुन बाहुन सो जोरा । हिय सो हिय कोइ बाग न मोरा ॥^२

परंतु एक ही प्रियतम से प्रेम के कारण दोनों ही शांत हो जाती हैं और अंत तक सदभाव एवं स्नेह के साथ रहती हैं। अतः कवि ने इस प्रेम के स्वरूप की आदर्श परिणति दे दी है।

जायसी में लौकिक प्रेम की व्यंजना शृंगार वणन

जसा कि ऊपर कहा जा चुका है जायसी का पदमावत प्रेमकाव्य है। कवि ने रत्नसेन और पदमावती के प्रेम प्रसंगों में लौकिक प्रेम की मार्मिक और रसात्मक व्यंजना की है। यदि रस के विभिन्न उपादानों की दृष्टि से जायसी के काव्य की विवेचना की जाय तो हम उनकी रस योजना पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। सुविधा के लिए यहाँ शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग एवं वियोग की दृष्टि से पदमावत पर पृथक् पृथक् विचार किया जा रहा है।

जायसी का संयोग शृंगार वणन

जायसी में संयोग शृंगार के प्रसंग पदमावती और रत्नसेन को लेकर घटित हुए हैं। उनमें आलम्बन आश्रय तथा रस के अंग अंगा की सम्यक् योजना पायी जाती है। आलम्बन का वणन पदमावत का विनिष्ट आकषण है। कवि ने इस दृष्टि से पदमावती के रूप सौंदर्य की मोड़क चाँकी प्रस्तुत की है। पीछे सौंदर्य की लोकोत्तर व्यंजना के प्रसंग में जायसी के सौंदर्य वणन के कुछ गुणों—सष्टि, मापी प्रभाव, लोकोत्तरता, पवित्रता आदि की विवेचना की जा चुकी है। लौकिक दृष्टि से जायसी के आलम्बन चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि कवि का ध्यान सदैव सौंदर्य को अपन चरम रूप में व्यक्त करने की ओर रहा है। इसीलिए जायसी ने पदमावती को रूप राशि के वणन में सष्टि के सुंदर उपादानों को लाकर उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। अनुभूति की तीव्रता और उत्कृष्ट में अधिक ॥ अधिक समय उपादानों का ध्यान जायसी की विशेषता है। अधोलिखित पंक्तियों में जीवन के

१ जायसी प्रभावली पृ० १८८

२ वही पृ० १९६

भार से चुकी किशोरी पदमावती के अग प्रत्यगो का मनमोहक और ललित वणन दानीय है—

‘भ अनन्द पदमावति बारी । रचि रचि विधि सब कला सवारी ।

जग बेग तेहि अग सुवासा । भवर भाइ लुवव बहु पासा ॥’^१

शृंगार के सयोग पक्ष में प्रेमाश्रय का वणन भी जायसी ने किया है। सौन्दर्य के प्रभाव में प्रसंग में पीछे पदमावती के रूप सौन्दर्य का वणन सुनकर रत्नसेन की मुग्धावस्था का चित्र दिया जा चुका है। जायसी ने इसके अतिरिक्त भी रत्नसेन की अवस्था का वणन किया है। निम्नलिखित पक्तियों में आधर रत्नसेन की प्रणय भावना की अभिव्यक्ति दृष्ट्य है—

‘फूल फूल फिरि पूछा जो पहुँची ओहि केत ।

तन निछावर क मिलीं ज्यो मधुरर जिय नत ॥’^२

जिस प्रकार बारहमासा विप्रलम्भ में उद्दीपन की दृष्टि से लिखा गया है, उसी प्रकार पद ऋतुवणन सम्मोह शृंगार के उद्दीपन का दृष्टि से।^३ राजा रत्नसेन के साथ सयोग होने पर पदमावती का पावस ऋतु की शोभा का कसा अनुभव हो रहा है उसका चित्र अथालिखित पक्तियों में दर्शनीय है—

पदमावति आहत ऋतु पाई । गगन साहावन भूमि साहाई ।

चमक बीजू धरस जल सोना । दादुर मोर सवद सुनि लोना ।

रङ्गराती पीतम सग आगो । गरजे गगन चौकि गर लागी ।

सीतल बूद ऊच चौपारा । हगियर सब दखाइ ससारा ॥

नागमती का जो बूदें बिरह दशा में बाण की तरह विमर्श करती हैं, पदमावती को सयोग तथा में वही बूदें वीर की चमक में सोने की सी लगती हैं। इसी के समानांतर सूरदास की भी उक्ति का उदाहरण करना असमीचीन न होगा निसिदिन बरसत नन हमारे मनुष्य के आनन्द या दुःख के रङ्ग में रजित प्रकृति का ही जायगा । दर्शा है स्वतन्त्र रूप में नहीं।

सयोगानुभूतिया प्रेमभाव की रसात्मक व्यञ्जना

प्रेमभाव का जो उत्कर्ष जायसी के पदमावत में पाया जाता है वह अनुपम है अद्वितीय है। कवि ने सयोग का वडा ही भवर और मादक, परंतु

१ जायसी प्रयावली प० २०

२ जायसी प्रयावली प० ५१

३ वही, (भूमिका भाग) पृ ४९

४ वही प० १४९

मावपूण वणन 'पद्मावत' में किया है। प्रथम मिलन के पदवात्, समोग माधुरी का एक उत्सासपूण वणन देखते ही बनता है—

“करि सिंगार तापहु बा जाऊ । ओही देखहु ठावहि ठाऊँ ।
जो जिनु मह सी उहै पियारा । तन मन सौं नहि होइ विचारा ।
नन माह है उहै समाना । देखी तहाँ नाहि कीई आना ॥”

इन पक्तियों में राज्ञी पद्मावती ने जिस मानसिक उत्सास का वणन किया है वह प्रियतम के प्रति असीम स्नेह और समपण की भावना पूर्णरूपेण परिपूर्ण है।

जायसी के समोग वणन में मन के स्वाभाविक उत्सास, अभिलाषा पावन भावना उत्कठा और प्रणयाविभारता का चित्रण हा अधिक उपलब्ध होता है। भावों की इस सांद्रता में कही कही धारीरिक उत्सास का मादन वणन भी मिलता है। ऐसे प्रसंगों में समोग की बड़ी तोल और रससंकुल अभिव्यक्ति ही कवि का लक्ष्य रहा है। समोग माधुरी के मादन वणनों की दृष्टि से विवाह क्षण का एक उदाहरण लिया जा सकता है। 'पद्मावती' प्रसाद के ऊपरी अंग पर खड़ी है। नीचे धारात का अपरिमित सौंदर्य है—रत्नसेन धर रूप में दिखायी दे रहा है। पद्मावती इस सौंदर्य और साजबाज का देखकर मुग्ध हो रही है। उसका मन मयूर जान दातिरेक से नाच रहा है। हृदय सरोवर में कामना की चंचल लहरियाँ, अठमेलियाँ कर रही हैं और रोम रोम अपूर्व उत्सास से सिहर रहा है। मानसिक उत्सास के साथ धारीरिक उत्सास का मादन, परंतु आध्यात्मिक वणन दृष्टव्य है—

‘हुलसे नयन दरस मदमति । हुलस अधर रङ्ग रस राते ।
हुलसा बदन आप रवि पाई । हुलसि हिया कबुकि न समाई ।
हुलसे कूच कसनी बंद टूटे । हुलसी भुजा, बलय कर फूटे ।

+

आजु चाँद घर आवा सूरु । आजु सिंगार होइ सब बूरु ।
आजु कटक जोरा है कामू । आजु विरह सौं होइ सग्रामू ।
अग अग सब धुलस, नाइ कतहूँ न समाइ ।

ऊँचहि ठाँव बिभोही, नइ भुरछा तनु आइ ॥ १

कहीं कहीं शृंगार का नग्न और विलासपूण वणन भी जायसी में मिलता

१ जायसी प्रभावली पृ० १४३

२ वही पृ० १२२-२३

है। यह फारसी शली के प्रभाव के कारण भी है और कुछ परम्परा के अनुकूल भी।

“सुनु, सनि । प्रेम सुरा के पिये । मरन जियन उर रहे न हिये ।

जेहि मद तेहि कहाँ ससारा । की सो घूमि रह की मतवारा ।

सो पै जान पिय जो कोई । पी न अघाड़ जाइ परि सोई ।

जाकह होइ बार एक लाहर । रहै न ओहि बिनु ओही चाहा ।

अरथ दरब सो देख बहाई । की सब जाहु न जाइ पियाई ॥^१

प्रेम के अतगत संयोग दशा से कही अधिक महत्व वियोग दशा की प्राप्ति है। संयोग की कामना तो सामान्य लौकिक प्रेम में भी उतनी ही तीव्र होती है, जितनी आध्यात्मिक प्रेम में लेकिन वियोग की तीव्रता प्रेम के निमल रूप का स्पष्ट करती है। सूफी प्रेमचार्यों में संयोग से अधिक महत्व वियोग की प्राप्ति है। वियोग प्रेम की कसौटी है। जायसी के वियोग वर्णन एवं उसकी उदात्तता का मूल्यांकन हम एक पद्यक अध्याय में प्रस्तुत करना चाहेंगे।

अनुभावो और सचारीभावो की योजना

श्रृंगार के उभय पक्षों में रस की सम्यक् सृष्टि के लिए अनुभावो और सचारी भावों की योजना अत्यावश्यक है। जायसी ने पदमावत में इनकी सुन्दर योजना की है। यह कथन किंचित उदाहरणों से पुष्ट किया जा सकता है। अधोक्ति पक्तियों में अग प्रत्यग के उत्सास का वर्णन द्रष्टव्य है—

फरे सहस साखा होइ दारिउ दाख जभीर ।

सब पखि मित्रि आइ जो लीटि उहै भइ भोर ॥^१

निःशङ्कि पक्तियों में स्वामीभावा-गानि पशवातापानि से समवित विरह की तीव्री व्यजना दक्षत ही बनती है—

बाह हसौ तुम भोसो कियउ और सौ नह ।

तुम मुख चमके बीजुरी भोहि मुख बरम मेह ॥^१

जायसी की प्रेम व्यजना की विशेषताएँ

जायसी के प्रेमकाव्य में प्रेम के स्वरूप का विस्तारपूर्वक विवचन करने के बाद यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ सामान्य विशेषताओं की चर्चा भी आवश्यक है। मुख्य रूपेण यहाँ तीन विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है—(क)

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १४१

२ जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १९०

३ वही, पृ० १८९

मानसिक पक्ष की प्रधानता (ख) भारतीय और फारसी पद्धतियों का समन्वय और (ग) भावात्मक और व्यावहारिक छलियों का समन्वय ।

(क) मानसिक पक्ष की प्रधानता

जायसी की प्रेम व्यञ्जना में मानसिक पक्ष की प्रधानता है । सयोग एवं वियोग उभय पक्षों में उनकी दृष्टि भावात्मकता की ओर ही अधिक रमी है । शारीरिक काम वासना का चित्रण कम हुआ है । सयोगपक्ष में कवि ने मन के उत्साह का और वियोग पक्ष में वेदना का चित्रण अधिक किया है । यह कथन पूर्ववर्णित विवेचन समर्पित हो जाता है । कवि ने जहाँ कहीं शारीरिक भोग विलास का भी वर्णन किया है उनमें विलासिता के बीच बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित होता दिखायी देता है । उनके विरह वर्णनों में एक गाम्भीर्य है और बेचना की अत्यन्त तीव्र व्यञ्जना भी प्राप्त होती है ।

(ख) भारतीय और फारसी प्रेम पद्धतियों का समन्वय

भारतीय प्रेम पद्धति में नायिका के प्रेम का वेग अधिक दिखाई देता है जबकि फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग तीव्र रहता है । जायसी ने अपने 'पदमावत' में इन दोनों पद्धतियों का समन्वय किया है । पहले उन्होंने फारस की प्रेमपद्धति का अनुसरण करते हुए रत्नसन को अपने प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील दिखलाया है और फिर नायिका के प्रेमोत्कृष्ट का भी वसा ही चित्रण किया है । उत्तरार्ध में तो नायिका का प्रेम ही प्रधान हो गया है । इस प्रकार पदमावत की प्रेम व्यञ्जना में भारतीय और फारसी दोनों पद्धतियों का समन्वय हो गया है ।

सयोग और वियोग के विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में भी इन पद्धतियों का समन्वय देखा जा सकता है । भारतीय पद्धति के अनुसार कवि सयोग शृंगार में मर्यादित और वियोग वर्णन में वेदना की अभिव्यक्ति की ओर झुका रहता है । परन्तु फारसी पद्धति के प्रभाव से वह सयोग वर्णन में अश्लील, दुःखी तथा वियोग में ऊहात्मक उल्लिखों का समावेश भी कर देता है । जिस विषाग वर्णन में भीमत्सता की यह योजना देखी जा सकती है—

विरह सरागिह भूज मासू । गिरि गिरि परै रक्त क भीमू ।

कटि कटि भांसु सरागु पिरोवा । रक्त क भांसु मासु सब रोवा ॥ १

(ग) एकात्मिक एवं लोक सापेक्ष प्रेम पद्धतियों का समन्वय

पदमावत की प्रेम व्यञ्जना की एक अन्य विशेषता है—एकात्मिक और

लोक सापेक्ष्य पद्धतियों का समन्वय । 'पद्मावत' में भारतीय प्रेम पद्धति के अनुसार लोक व्यवहार के बीच अपनी आभा का प्रसार करने वाले प्रेम और फारसी पद्धति के अनुसार मनस्वियों के ऐकांतिक लोक बाह्य और स्वतन्त्र भावात्मक सत्ता के रूप में विकसित होने वाले प्रेम— इन दोनों की समान रूप से व्यञ्जना हुई है । 'पद्मावत' में इसी समन्वय के अनुरूप एक ओर पद्मावती और रत्नसेन और दूसरी ओर नागमती और रत्नसेन के प्रेम प्रसंगों की अवधारणा भी है । अतः में दोनों को दाम्पत्य जीवन में परिणति भारतीय प्रेम पद्धति की प्रधानता सूचित करती है ।

जायसी की प्रेम व्यञ्जना इसके विवेचन से कवि की समन्वय कारिणी प्रतिभा के साथ साथ मूल भावधारा का जो परिचय हमें मिलता है, उससे यह पूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाता है कि मूलतः सूफी प्रेम की भावना से अनुप्राणित होने पर भी सम. प्रेमोक्त्यान्तक काव्यों की भाँति जायसी के काव्य में भी भारतीय लौकिक प्रेम पद्धति का अनुसरण किया गया है । सभी प्रेमोक्त्यान्तों के समान 'पद्मावत' का मूल स्रोत भी भारतीय लोक जीवन और लौकिक तथा व्यावहारिक प्रेम की प्रधानता रहा है और इसी माध्यम से उन्होंने अपनी 'प्रेम पीर' का सहज सरल और मनोरञ्जक निरूपण किया है । इस रूप में जायसी का पद्मावत भारतीय लौकिक प्रेमोक्त्यान्तक काव्यों की परम्परा का एक अमर कीर्ति स्तम्भ है ।

४ | विरह, प्रेम की कसौटी

विरह-वर्णन मध्यकालीन नवियों का एक विनोद वण्यविषय रहा है। सच्चे प्रेम की परख विरहावस्था में ही होती है। प्रिय के निकट रहने पर प्रतिदिन आनन्द की उदभावना तो होती ही है किन्तु नवनीत की सी स्निग्धता शुष्क होने लगती है। जीवन की इस शुष्कता एवं भावों की कोमलता पर आच्छादित इसी आवरण को दूर करने के लिए विरह का आश्रय लेना पड़ता है। जिस प्रकार अग्नि में पड़ने के पश्चात् ही सोने की परख होती है, उसी प्रकार वियोग की अग्नि में तपकर ही प्रेम अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करता है। डॉ० हनुमानदास 'चकोर' विरह को प्रेम की कसौटी स्वीकार करते हुए कहते हैं। 'वियोग ही तो प्रेम का वास्तविक परीक्षक है जिसके प्रश्नोत्तर के पश्चात् सच्चा परिणाम प्राप्त होता है। सच्चा प्रेम वह तप्त स्वर्ण है जो अग्नि में पड़ने के पश्चात् मूल्यवान् बनता है।'

परमात्मा की सत्ता का सार है प्रेम। इसीलिए सूफी साधना में प्रेम का बड़ा महत्व है। भक्ति में जिस प्रकार देव विषयक रीति का प्रतिपादन हुआ है, उसमें श्रद्धा एवं भय की प्रधानता होती है। भारतीय पद्धति में इन तत्त्वों के होते हुए भी प्रेम का अंग विद्यमान था। कृष्ण और गोपिकाओं की असी किक प्रेम में हमें इस प्रेम के पूण दशन होते हैं। भागवत में भी इसी प्रकार के प्रेम का दशन होता है परन्तु हिन्दी साहित्य में सबसे प्रथम साधना के निमित्त प्रेम को आधार बनाते हुए हम सूफी साधका को ही पाते हैं। प्राप्त सामग्री के आधार पर ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी जिन दो प्रकार के साधको का उल्लेख हुआ है उसमें प्रथम वर्ग के लोग ने भी प्रेम को महत्ता प्रदान की है। सूफी साधको के लिए यह कोई नवीन माग नहीं था। परम्परा ही उन्हें प्राप्त हुआ

था । फारस आदि देशों में यह मानव मन में माधुर्य भर ही चुका था और यहाँ भी वष्णव सम्प्रदाय की भक्ति परम्परा में प्रेम का उदभास हो चुका था । परन्तु सूफियों ने निराकारोपासना में प्रेम की आधार शिला पर साधना का एक ऐसा सुन्दर सदन खड़ा किया और अत्यन्त तत्कालीन परम्परा से सामग्री लेकर उसमें ऐसा पुट दिया कि देखते ही बनता है ।

फारसी मनस्विदों के आधार पर प्रेममार्गी कवियों ने प्रेमाख्यातक काव्य लिखे पर प्रेम काव्य कुछ निश्चित दृष्टियों पर लिखे गये । नायक किसी रमणी के प्रेम पात्र में आबद्ध हो योगी बनकर निकल पड़ता है और अनेक कष्टों के उपरान्त अपनी प्रेयसी को प्राप्त करता है । चार प्रकार के प्रेमी में से प्रायः चतुर्थ प्रकार से ही प्रेम का आयोजन हम इन कथाओं में पाते हैं । भारतीय सस्कृति में विवाह का अतीव महत्त्व है । इसे एक धार्मिक क्रिया माना गया है । अपरिचिततावस्था में ही वर वधू के परिग्रहणोपरांत उनमें जो प्रेम का उदभास होता है और पुनः पुनः पुनः मधुगता को प्राप्त होता है वह उनके पवित्र दाम्पत्य के नाम से अभिहित होता है । दूसरे प्रकार का प्रेम वह है जो किसी रम्य स्थान पर परिचय से उत्पन्न होता है । इसमें नायिका का सौन्दर्य एवं हाव भाव तथा समीपस्थ प्रकृति उद्दीपन का काम करते हैं । उदाहृ इसका परिणाम होता है । विवाह से पूर्व अधिकतर नायक और नायिका दोनों ही बिरह में तड़पते रहते हैं । इस बीच द्विती प्रयोग एवं पत्र प्रेषण भी होता है जो बिरह को और उद्दीप्त कर प्रेम परिपाक का कारण होता है । यदा कदा क्षणिक संयोग भी प्राप्त हो जाता है । तृतीय प्रकार का प्रेम प्रायः कामुकता पूर्ण ही होता है । बहुपत्नियों में प्रेम का जो स्वरूप हो सकता है, वही इसमें आता है । चतुर्थ प्रकार का प्रेम प्रायः गले ही पड़ा करता है । यह चित्र या स्वप्न में दशन, गुण-श्रवण अथवा तत्सम्बन्धी किसी सुन्दर के दशन से होता है । पद्मावती में गुण-श्रवण से ही प्रेम का उत्पन्न दिखाया है ।

प्रेम चाहे उसे भी उत्पन्न हुआ हो उसमें कुछ कष्ट तो होता ही है और जितनी ही आत्मा उसमें रमने का प्रयत्न करती है उतना ही उसमें कष्ट होता है । चूँकि ब्रह्म के प्रति हम श्रृंगारिक भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं, अतः इसका मूल कारण ब्रह्म के सन्निकट पहुँचने का प्रयत्न ही कहा जा सकता है । प्रेमाभिलाष की प्रेरणा से ही प्रत्येक स्थान पर उसका अनुभव करने का प्रयत्न करता है । चकि वह बाह्य दशन न देने के कारण हृदय को प्रभावित करता है परन्तु उसकी वह आत्मीयता हृदय में एक विशेष अनुराग और ध्याना उत्पन्न कर देती है ।

विद्वानों ने शृंगार के दो भेद माने हैं सयोग और वियोग । जब नायक और नायिका परस्पर सयोगावस्था में होते हैं, वहा पर सयोग शृंगार होता है और जहाँ प्रमी एवं प्रेमिका एक दूसरे से दूर रहते हैं और वियोग जय अवस्था उत्पन्न हो जाती है वहाँ वियोग शृंगार होता है । वास्तव में आंतरिक यन्त्रण ही वियोग बनाती है और इसका अनुभव प्रेम वेदना पूर्ण हृदय में ही होता है । सूफी कवियों की भावना शृंगारी है अतः वियोग पक्ष को अधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि नायक के विदेश जाने पर नायिका को घ्यषित हाना पड़ता है वहा सच्चे प्रेम की परीक्षा का काल होता है । उस समय अनेकानेक परिस्थितियाँ आती हैं जो नायक को नायिका के प्रेम के लिए और नायिका को नायक के प्रेम के लिये 'याकुल बना देती हैं और दोनों प्रेम के अभाव की महत्ता को स्वीकार करते हैं । इस समय प्रमी और प्रेमास्पद के हृदय में सयोग काल की अपेक्षा अधिक स्नेह होता है ।' जिस प्रकार वणन में किसी वस्तु का बिम्ब दूरी बढ़ने पर गहरा होता जाता है, उसी प्रकार प्रिय और प्रेमास्पद की दूरी बढ़ने पर स्नेह की गहराई बढ़ती जाती है । यह विरह वणन अनेक रूपों में हुआ है । साम्भारत सूफियों ने दो प्रकार से चित्रण किया है । प्रकृति के आश्रय से और सवया स्वतंत्र रूप से । प्रकृति के आश्रय से दो प्रकार से वणन होता है । उद्दीपन और मानवीकरण के रूप में । पद्यावत में 'भारहमासा का चित्रण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है । इसमें हम मागमती के निरीह, निरावरण गम्भीर एवं निमल रूप का अनुभव करते हैं । उसका हृदय अत्यन्त ही उज्जरल और पवित्र है । यद्यपि अथाह मास में दादुर मोर और काकिला बोलते हैं । उसे अकेले रहने का कारण कष्ट होता है -

जिन घर बता त सुखी हम गारी ओ गव ।

वन पिषारा बाहिरै हम सुख भूला सब ॥ १

आचार्य गुल न मागमती के विरह वणन को हिन्दी साहित्य का अमूल्य निधि घोषित किया है ।^१ उनके अनुसार जायसी के विरह वणन में वेदना का कोमल और निमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन के भ्रमस्पर्शी माधुर्यपूर्ण चित्र चतुर्विध व्याप्त प्रकृति और व्यापारों के साथ हृदय की साहचर्य भावना आदि का प्रसंगानुबूल स्वच्छन्द प्रवाहपूर्ण ढंग से अतीव सुंदर अंकन किया गया है । उसमें प्राकृतिक वस्तुओं के रुचिलिष्ट विगद चित्रण के साथ-साथ सादृश्य और

१ जायसी प्रभावली पृ० १५३ ।

२ वही (भूमिका भाग) पृ० ४० ।

वषम्य के चित्रों द्वारा प्रस्तुत जोर अप्रस्तुत का सुंदर सामंजस्य भाव सौंदर्य की एक निराली छटा उत्पन्न कर देता है इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

‘बरम मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नन चुब जस ओरी ॥
 पुरवा लागि भूमि जल पूरी । आक जवास भई तस क्षूरी ॥
 घान मूस भरे भरवो माहा । अवहुं न आएहि सीचेहि लाहा
 यल जल भरे अपूर सब, घरति गगन मिलि एक ।

घनि जीवन अवगाह महँ दे वृद्धत पिउ । टेक ॥”

यहाँ कवि सादृश्य के आधार पर नागमती के विरह का मार्मिक वर्णन कर रहा है। विरह व्यजना के लिये प्रकृति का माध्यम ग्रहण करने से जायसी के विरह वर्णन में हृदय के वेग की व्यजना बड़े स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हुई है और उसकी इस स्वाभाविकता ने भावा को चरम उत्कर्ष तक पहुँचा दिया है। जायसी मानव वस्तियों और भावों को किस प्रकार धरमोत्कर्ष प्रदान कर देते हैं इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है। वह अभिलाषा का वर्णन करते हैं-

‘राति दिवस बस यह जिउ मोर । लागी निहोर कत अब मोरे ॥

५६ तन जारी छार ब कहीं कि पवन उबाव ।

मकु तेहि भाग उडि पर, कत घर जहँ पाव ॥’

विरहिणी प्रिया की अभिलाषा का ऐसा हृदयग्राही वर्णन या तो जायसी के ‘पद्मावत’ में ही मिलता है या मसन के ‘मधुमालती’ में। उपयुक्त पंक्तियों में नागमती के हृदय की सम्पूर्ण जातरता दीनता पति के प्रति निष्ठा और सच्चे प्रेम में आत्म बलिदान की उत्कट हृदयस्थ नि अभिलाषा व्यक्त हो रही है। ऐसी ही गतिशा ने नागमती के विरह को महत्त्वपूर्ण बना दिया है। जिससे नागमती का रत्नसेन के प्रति अगाध स्नेह का परिचय मिलता है। ‘पद्मावत’ में नागमती का विरह ही सर्वश्रेष्ठ है इसीलिए हम सर्वप्रथम नागमती के विरह की वस्तुविकता का ही परीक्षण करेंगे।

रत्नसेन पद्मावती की प्राप्ति करने सिहल चला गया है। उसे वहाँ प्रेरित करने में हीरामन शिव एकमात्र कारण रहा है। नागमती पति विरह में यथित चित्तीर आने वाले माग पर टकटकी लगाये बठी पति की प्रतीक्षा करती रहती है और उस बालस्वरूप तोते को कोताही रहती है जिससे नागमती का रत्नसेन के प्रति अनन्य प्रेम प्रकट होता है। इस स्थिति का वर्णन करते हुये जायसी कहत है -

‘नागमनी चितउर पथ हेरा । पिउ जो गय पुनि कीह न केरा ॥

नागर नाहु भारि बस परा । तेइ मोर पिउ मोसीं हरा ॥

सुआ काल होइ लइगा पीऊ । पिउ नहि जात, जात बर जीऊ ॥’^१

सारम की जोड़ी रिछुड गयी । नागमती पति विरह म मूल-मूल बर
पिउर बन गयी है । प्रिय के अभाव मे सारा ससार उसे भयानक लगना है ।
प्रकृति, अपने विभिन्न भावक सुंदर रूपा द्वारा उसकी विरहाग्नि की भीर
अधिक प्रदीप्त करती रहती है । नागमती को जीवन भार लगन लगना है ।
वह क्या स पागल हुई जा रही है -

‘पिउ वियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा नित बोल पिउ पिऊ ॥

अधिक काम दाघें सो रामा । हरि लेइ सुआ गयउ पिउ नामा ॥

विरह वान तस लाम न डोली । रकत पसीजि भीजि गई चोली ॥

सूया हिया हार भा भारी । हरे हरे प्राण तनहि सब नारी ॥’^२

उसे विवास सा हो जाता है कि अब उसका प्राण नहीं बचेगा । उसका
रमक सा उससे दूर है । वह मरते समय उसकी बोली तक नहीं सुन सकेगी -

प्राण पयान होत जो राखा । को सुनाव प्रीतम क भाखा ॥’^३

एक-एक कर महीन बीतते चले जाते हैं पर तु उसका प्रियतम लौटकर
नहीं आता । विरह निरंतर व्यथित करता रहता है । वह न जीती है न मरती
है । उसकी दगा अत्यंत विषम हो उठी है । जो प्राकृतिक उपादान सयोग के
समय उस महा मत्त बना अधिक आनंद प्रदान करते थे व अब भी उसके हृदय मे
प्रिय मिलन की उत्कण्ठा तो उत्पन्न करते हैं पर तु पति के समीप न रहने के
कारण उस निरंतर दुख ही पहुँचाते रहते हैं । इस प्रकार यहाँ आसपी प्रकृति
के उद्दीपनकारी रूप का वर्णन कर नागमती की विरह व्यथा को चरमोत्कर्ष
प्रदान कर देते हैं ।

पति परित्यक्ता, पति विरह विन्मता नागमती अपना सारा अहंकार और
रूप गन भूल एक सामान्य नारी बन जाती है । वह यह भूल जाती है कि वह
एक रानी है । उसे लगना है जैसे सारी प्रकृति न उसके विरुद्ध एक भयानक
पडपत्र रच रखा है और उस सताने तथा उसकी प्रेम परोक्षा मे लग गयी है ।
प्रकृति के उपादान विरह को उत्पन्न करते हैं जिसमे काम की भावना उद्भात
हो जाती है और प्रिय की स्मृति सतान लगती है । उसी समय प्रेम की सच्ची

१ जायसी ग्रंथावली, पृ० १५१ ।

२ वही पृ० १५१ ।

३ वही पृ० १५१ ।

परीक्षा होती है । प्रकृति के चतुर्मुखी आक्रमण से त्रस्त हो नागमती अत्यन्त कष्ट स्वर में प्रियतम को पुकारने लगती है । अपाढ़ का मास आ गया है । आकाश में उभड़ते काल मेघों का देश उसे ऐसा लगता है मानों विरह ने सेना सजाकर उसपर आक्रमण कर दिया है—

चढ़ा अपाढ़ गगन घन गाजा । साजा विरह बुद दल बाजा ॥

घूम, साम, घोर घन घाए । संत घजा, वग पाति देखाए ॥

खड्ग बीजु चमक चहुँ ओरा । व द वान बरसाहि घन घोरा ॥ ^१

इस परिस्थिति से त्रस्त होकर नागमती आत्त स्वर में पति को रक्षा पुकारती है—

“औनई धटा आइ चहुँ घेरी । क त ^१ उबार मदन हों घेरी ॥” ^२

परन्तु उसका प्रियतम उसकी रक्षा करने लौट नहीं आता । वह प्रतीक्षा करते करते एक जाती है । उसके और प्रियतम के बीच में अथाह समुद्र लहरा रहा है । उसकी जीवन नया का खिखया सात समुद्र पार दूर बठा है । नागमती की समझ में नहीं आता कि उस तक कसे पहुँचें । वह बचारी पूरी तरह से धिक्का और निरुपाय हो रहती है—

परवत समझ अगम बिच बीहठ घन वन ठाक ।

बिमि क भँटो क त तुम्ह ना माहि पाव १ पाँख ॥ ^३

इसी प्रकार एक एक कर नये महीन आत जाते हैं और उसे निरन्तर विरह ज्वाला में अधिकाधिक दग्ध करते बीत जाते हैं । वह सूख सूख कर काल बनती जाती है परन्तु प्रियतम फिर भी लौट कर नहीं आता । वह विदेश में जाकर उसे भुला बठा है—

‘कत न फिरे विदेसहि भूले ।’

अब वह क्या करे । कस पति के पास पहुँचे अथवा कसे उस अपन पास बुलाय । अतः वह भीरे और काँव से प्रार्थना करती है कि वे प्रियतम को पास उसका स देग लेकर जाने की कृपा कर—

‘पिठ सा बहेउ स’दसडा हे भोग । ह काग ।

सोपनि विरहै जरि भुईं तेहिह घुआ हम्ह लाग ॥’

१ जायसी—प्र पावली प० १५२ ।

२ वही प० १५२ ।

३ वही प० १५३ ।

४ वही प० १५३ ।

५ वही, प० १५४ ।

परन्तु कोई भी उसका सङ्ग लेकर प्रियतम के पास नहीं जाता । वह विरह की मयानक ज्वाला में व्याकुल हो बार बार प्रियतम को पुकारती है—

जल बजाहिनि बध, पिठ । छाहीं । आइ बुझाउ, अमारन माहीं ॥^१

बसि कहता है कि यह विरहानि इतनी मयानक हानी है कि सती के अनिरित्त इसकी ज्वाला का मगार में दूमग काई नहीं भेल सकता—

‘गिरि, समुद्र सनि मध, रवि सहि न सकहि कह आनि ।

महम्मद सती सराहिण, जरे जा यस पिठ आनि ॥’^२

बस के बारह महीने एक-एक कर बीत जाते हैं और फिर क्या ऋतु आ जाती है परन्तु फिर भी नागमती का प्रियतम लौटकर नहीं आता ।

बारहमासा’ के रूप में किए गये नागमती के इस विरह कथन में हम नागमती की मन्त्र एव पति विरह व्यथिता पारी के रूप में ही पाते हैं । उसका यह रूप प्रस्तुत कर जायसी ने विरह रस की अनुभूति का साधारणीकरण कर दिया है । इस बारहमासा’ में नागमती के विरह का ही नहा अपितु विरह मान का स्वाधिक मार्मिक और सात्विक रूप चित्रित हुआ है ।

बस के बारह महीने का नागमती प्रामाद के मानस हा बाट लनी है, परन्तु फिर भी जब उसका प्रियतम लौट कर नहीं आता तो वह विरहानि की अति गमता से उमस्त-सी होकर वन वन विलाप करता फिरता है । उसकी यह विरहानि इतनी मयानक है कि वह जिम पक्षी या वध के पास जा उसे अपनी विरह कथा सुनाती है वहा जलकर भस्म हो जाता है—

जहि पक्षी के नियर हाई, कहै विरह का बात ।

सोइ पक्षी जाइ जरि तरिवर हाइ त्रिपान ॥^३

वेदना की अतिगमता के कारण उसकी आँखा से निरंतर खून के आँसुओं से घुघुचियों का सा डेर लग जाता है—

‘जहु-जहुँ ठावि हाइ बनवासी । तहुँ तहुँ होइ घुघुनि क रासी ॥’^४

नागमती उपवना के वृक्षा के नीचे रात रात भर रुन्न करती फिरती है । इस दशा में पशु पक्षी पक्षक जा कूठ भी समझ आता है उस वह अपना दुःख सुनाती है । इस पर आचार्य रामचन्द्र गुप्त का कहना है । ‘वह पुण्य

१ जायसी प्रयागली पृ० १५६ ।

२ वही, पृ० १५६ ।

३ वही, पृ० १५८ ।

४ वही, पृ० १५८ ।

दगा घाय है जिसम ये सब अपने खने लगते हैं और यह जान पड़न लगता है कि इन्हें दुख सुनाने से भी जो हलका होगा । सब जीवों का शिरोमणि मनुष्य और मनुष्या का अधीश्वर राजा । उसकी पटरानी जो कभी बड़े बड़े राजाओं और सरदारा का बातों की थार भी ध्यान न देती थी वह पक्षियों से अपने हृदय की वेदना कह रही हैं उनके सामन अपना हृदय खोल रही है । हृदय की इस औत्पत्य पूरा और यापक दगा का कविया न प्रेम दशा के भीतर ही बणन किया है । वाल्मीकि कालिदास जादि से लेकर जायसी, सूर, तुलसी आदि कविया ने इस रंगा का बणन किया है । वाल्मीकि के राम सीता हरण होने पर वन वन पूछते फिरत है— 'हृदम्ब' । तुम्हारे पुष्पो से अत्यधिक प्रीति रखने वाली मरी प्रिया का यन्त्रि जानते हो सा बताओ । हे बिन्दु बल । यदि तुमने उस पीत पट धारिणी को देखा है तो बताओ । हे मग उस मग मयनी को तुम जानते हो ? ' इसी प्रकार तुलसी के राम भी वन के पशु पक्षियों से पूछते हैं—

‘हे रग मग हृ मधुकर खेनी । तुम देखी सीता मगननी ?’

कालिदास का यन्त्र भी इसी चतनाचनन भेद इसी प्रेम रंगा के भीतर मला है । इस प्रकार की स्थिति का बिगण उमाद की उजना के लिए किया जाता है । नागमती उपवना में रोधी फिरती है । उसके विलाप से नींदो में स्थित पक्षिया भी निद्रा हराम हो जाती है—

फिरि फिरि राव कोइ नहि बोला । आबी रात विहगम बोला ॥

तू फिरि फिरि दाहै सब पाखी । कहि दुख रनि न लावति आखी ॥

राजा पुरुरवा कानिल हंस इत्यादि को पुरुरता ही फिरता है पर कोई महानुभूति प्रकट करता नहीं गिलायी देता । पर नागमती की दशा पर

१ जायसी ग्रंथावली भूमिका भाग पृ० ४० ।

२ अपि कञ्चित्कथा दष्टवा सा कम्ब प्रिया प्रिया ।

कदम्ब यन्त्रि जानीये दास सीता शुमाननाम ॥

स्तिग्धपल्लवसकाशा पीत कीर्णवासिनी ।

गमस्व यदि वा दष्टवा विल्व विल्वोपमस्तनी ॥

श्रीमद्वारमीकीय रामायणम अरण्यकाण्ड सम ६० श्लो० सं० १२-१३

पठित पुस्तकालय कांगी प्रथमावति सन १९५१ ।

३ रामचरित मानस अरण्यकाण्ड दाहा ३०/९, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

४ जायसी ग्रंथावली, पृ० १५९ ।

५. विक्रमोपशोयम्, अंक ४ ।

एक पक्षी को दिया जाती है। वह उसके दुःख का कारण पूछता है। नागमती उस पक्षी से कहती है—

‘चरित अक उजार भए कोई न सदेसा टेक ।

वहाँ विरह दुख आपन, बठि सुनहु दह एव ॥’^१

पुन वह आग बहती है हे बीरन । मैं अपना दुःख बिसस कहूँ । अपना दुःख तो उससे ही कहना चाहिए जो पराई परोबा का अनुभव कर सके । जो प्रियतम की कथा को आकर मुझ सुनायगा, मैं आज मैं उसकी दासी बनी रहूँगी—

कथा जा कहै आइ आहि बेरी । पावरि होउ, जनम भरि घेरा ॥’^२

वह तो अपने प्रियतम के नाम की माला जपत जपत स्वयं माला के सदृश क्षीण हो गयी है। वह अपनी व्यथा उससे कस कहें क्योकि—

‘हाह भए सब बिगरी, नस भई सब ताति ।

रोव राव त धुनि उठ, वहाँ बिधा केहि भाति ॥’^३

विरहिणी की ऐसी वरुण बिषाग दीन और कातर दगा का ऐसा हृदय ग्राही चित्रण हिंदी साहित्य में दुर्लभ ही माना जायगा। यहाँ मानो जायसा न अपने हृदय की सारी विरह व्यथा को सजीव और साकार बना दिया हो।

इसके उपरांत नागमती उस पक्षी द्वारा पद्मावती के लिए जा सदेश भिजवाती है उसमें उसका जीवन की सारी मार्मिक ‘यथा’ घुल निसर कर पावन हो उठी है। यह सदेश ही वस्तुतः इस सारी विरह ‘यथा’ का मानो प्राण विद्युत बन गया है। वह सदेश इस प्रकार है—

‘पद्मावति सौ कहउ विहगम । कत लोभाई रही करि सगम ॥

+

+

+

सोहि भोग सो काज न बारी । सोह दीठि क चाहन हारी ॥’^४

इसके साथ ही नागमती रत्नसेन के लिए जो सदेश भिजवाती है उसमें अपने दाय की एक भी बात न कह बवल रत्नसेन की माता की पुत्र विधोग में हो रही दारुण दगा का ही वर्णन करती है। वह स्वाभिमानिनी परदा पति को अपनी विरह ‘यथा’ सुना उसे दुःख नहीं पहुँचाना चाहती। उसका यह

१ जायसी ग्रंथावली, पृ० १५९ ।

२ वही ।

३ वही, पृ० १५९ ।

४ वही ।

विरह उस प्रणय का विरह है जो स्वयं जलना जानता है, परन्तु दूसरे तक उसकी ज्वाला नहीं पहुँचने देना चाहता ।

पदमावती के हृदय में विरह का आरम्भ काम के प्रभाव से उत्पन्न होता है । जब राजा रत्नसेन सिंहल दीप पहुँच कर उसे प्राप्त करने के लिए योग साधना करने लगा तो उसके योग का प्रभाव पदमावती के हृदय में विरह को दाघ कर देने वाली अग्नि उत्पन्न कर उसे जलाने लगता है । परन्तु विरह की यह भावना किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होकर काम की तीव्रता के ही कारण उत्पन्न होती है । पदमावती उस विरह के कारण याकुल हो उठती है । कवि उसके विरह को रत्नसेन की योग साधना का प्रभाव बताता हुआ कहता है—

पदमावती तेहि ओण सजोगा । परी प्रम बस गह विमोगा ॥

नीद न परै रनि जो आषा । सेज केवलि जानु कोइ लावा ॥”

इसमें रत्नसेन का कहीं स्पष्ट उल्लेख न होने से पदमावती की इस विरह व्याकुलता को काम जनित ही माना जायेगा । वह परम्परायुक्त रूढ़ विरह वर्णन है । हम पदमावती के विरह का एकाएक उत्पन्न हो भयकर रूप धारण करते नहीं पाते । उसकी विरह भावना में क्रमिक विकास होता चलता है । शिष्यमठ्य में रत्नसेन से साक्षात्कार हो जाने के उपरांत उसका विरह काम जनित न रहकर सच्चे विरह का रूप धारण कर लेता है । इसके बाद हम उसके विरह का अनुरीतर प्रगाढ़ रूप धारण करते देखते हैं । वह रत्नसेन से प्रेम करने लगी है और जब उसका पिता गधव सेन रत्नसेन की बंदी बना उसे शूली पर बड़ा देने की आज्ञा देता है तो उस समाचार को सुन पदमावती का रोम राम अपने प्रियतम के प्रति “याकुल हो उठता है और वह असह्य वेदना को न सह पाकर मूर्च्छित हो जाती है । कवि कहता है ।

‘चित्त जो चिन्ता की ह धनि रोव रोव समेत ।

सहस साल सहि आह भरि मूर्च्छि परीगा चेत ॥”

उसकी दगा जतीव विषम हो उठती है । उसके प्रियतम के प्राण सकट में पड़े हुए हैं यह जान वह स्वयं मरणासन्न हो जाती है । उसकी सखियाँ उसकी सासो को गिनने लगती हैं—

‘जो बहिं सास बिनहि खिन सखी । कब जिउ फिर पौन-पर पखी ॥’^१

पदमावती की यह विरह यथा सारे विश्व में व्याप्त हो जाती है। सारा विश्व उसके विरह में दग्ध हो जाता है—

‘कसेहु विरह न छाड़, भा ससि गहन गरास ॥

नखत चहूँ दिसि रोवहि, अघर घरनि अकास ॥’^२

उसकी यह विरहाग्नि ऐसी प्रबल और भयानक है कि कोई भी उपाय उसे शान्त करने में असमर्थ है—

जहँ लगि चदन मलयगिरि, जो सायर सब नीर ॥

सब मिलि आइ बुझावहि, बुझ न आगि सरीर ॥’^३

उसने तो अब स्वयं को अपने प्रियतम की शाश्वत जीवन सगिनी मान लिया है। जीवित रहने से दानो साथ रहेग और यदि मर्यु का आलिंगन करना पड़ेगा तो दोनों साथ ही करेंगे। साथ ही पदमावती अपने प्रियतम की सारी आपदाओं को अपने ऊपर लें लेना चाहती है जिसमें उसने प्रियतम का बाल भी बाका न हो सके—

‘जो रे जियहि मिलि गर रहहि मरहि ती एक दोउ ।

तुम जिउ कहँ जिनि होइ किछु मोहि जिउ होइ सो होउ ॥’^४

इसके आगे भी पदमावती रत्नसेन भेंट खंड में रत्नसेन से मिलने पर पदमावती अपने विरह का वणन करती हुई रत्नसेन से कहती है वह उसके विरह में तड़पती रहती थी। परंतु पदमावती का यह सारा विरह सयोग से पूरा का और परम्परा मुक्त विरह रहा है। इसलिए इसमें विरह की वह मार्मिक अनुभूति नहीं मिलती जो सयाग के उपरांत प्रेम प्रेमिका के बिछुड़ जाने पर हृदय में उत्पन्न होती है। विरह की इसी अनुभूति का वास्तविक और मार्मिक माना जाता है। पदमावती के जीवन में विरह की यह स्थिति उस समय आती है, जब सिंहल से चित्तोर लौटते समय माग में समुद्र में जलपोत टूट जाता है और रत्नसेन और पदमावती समुद्र में बहुत दूर भिन्न भिन्न तटों पर जा लगाते हैं। समुद्र की तनुजा लक्ष्मी तट पर मूर्छित पड़ी पदमावती को हाश में लाती है और पदमावती चेतनावस्था में आते ही, स्वयं को एकाकी पा पति वियुक्ता

१ जायसी ग्रंथावली प० १०६

२ वही प० १०७

३ वही, प० १०८

४ वही पृ० ११०

त्रोंधी की भांति आन ऋन्न करने लगती है। यहाँ पदमावती का विरह विलाप में आध्यात्मिक अनुभूति का सा रंग आ जाता है। पति चक्षुओं के पास और मांस में ही स्थित है परन्तु उस तक पहुँचना सम्भव नहीं है। इसलिए पदमावती कहती है—

पिउ हिरदय मह भेंट न होई । को रे मिलाव कहीं कोहि रोई ।^१

पद्मावती के विरह का मार्मिक अनुभूतिमय रूप इसी स्थल पर निरव्यता है। उसकी यह विरह वदना नागमती की विरह वदना के ही समान अत्यन्त गहन, प्राणांतक और हृदय द्रावक है। यही विरह प्रेम की कसीटी है।

इसके उपरांत पद्मावती के विरह का दूसरा मार्मिक रूप उस समय देखने को मिलता है जब अलाउद्दीन रत्नसेन को बंदी बना दिल्ली से ले जाता है। पद्मावती को इस समय दुहरा दुख सहना पड़ता है। एक तो उसका पति उससे बिछुड़ कर गंगु के बंदी गहन में भयकर यातना भोग रहा है दूसरे पद्मावती के कारण ही उसके पति को बंदी बनाया गया है। यही सोच सोच कर वह कर्णविलाप करने लगती है।^२ वह स्वयं को बंदी बनवा पति की मुक्ति करवाना चाहती है।^३

पद्मावती के विरह का जा अंतिम रूप सामने आता है उसमें विरह व्यथा की आकुलता और छटपटाहट न होकर एक प्रगलभ गाम्भीर्य मिलता है। वह पोहन शृंगार कर पति के साथ सती हो आन के लिए प्रस्तुत हो जानी है और गान्त स्वर में कहती है—

‘यही दिवस ही चाहत नाहा । खली साव पिउ । दई गलबाहा ॥

सारस पखि न जिय निनारे । हा तुम्ह बिनु का जिर्जी पियार ॥

नेवछावरि क तन छट रावी । छार हाउं सग बहुरि न आवो ॥

दीपक प्रीति पनग ब्रउ अनम निवाह करेउ ॥

नेवछावरि बहु पास हाइ कठ लागि बिउ दउ ॥

यह पद्मावती के विरह का चरमावस्था है। हम पूर्वांकित पक्तियों में देख

१ जायसी ग्रंथावली प० १७७

२ ‘नीर गभीर कहाँ हा पिया । तुम बिन फाट सरवर हिया

—जायसी ग्रंथावली प० २६४

३ पिय जेहि वदि जोगिनि हाइ धावी । ही वदि लउ, पियाहि मुरावो ॥

—वही प० २८०

४ वही, पृ० २९९

आय है कि पद्मावती का विरह विभिन्न परिस्थितियाँ में विकास पाता हुआ उत्तरात्तर अधिक प्रगाढ़, गहरा और गम्भीर बनता जाता है। इसी कारण उसके विरह में एक अद्भुत स्वाभाविकता और मार्मिकता उत्पन्न हो गयी है। इसके विरह का यह अंतिम रूप पूरा प्रज्ञान और गम्भीर रूप धारण करता है, जिसमें करुण प्रश्न या विरह वेदना का स्थान पर पति से दायवत् मिलन की आनन्दमयी विरणों की शोभा हा रही है। डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने पद्मावती के उपयुक्त चित्र से अभिभूत हो लिखा है। 'पद्मावती के पक्ष' कितनी मार्मिक है। क्या अपनी सारी मधुरता विरह अपनी सारी मिठास, प्रणय अपने सारे स्थायित्व और नारी अपनी चरम भावुकता के साथ इन गम्भीरों में साकार होकर बोल रही है।"

पद्मावत्त में विरहानुभूति का सर्वप्रथम दशन रत्नसन के विरह के रूप में होता है। पद्मावती के विरह के समान ही रत्नसेन का विरह भी विभिन्न स्थितियों में परलवित और विकसित होता चला है। इसके विरह को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) पूवराग का विरह, (२) विवाह के बाद का विरह।

प्रथम विरह का आरम्भ हीरामन चुक द्वारा पद्मावती का रूप सौंदर्य का वणन सुनने के पश्चात् होता है। यह 'प्रेम खण्ड' से आरम्भ होकर पद्मावती मुखा भेट खंड तक चलता है। इस भाग में रत्नसन पद्मावती के लिए विरह व्याकुल तो रहता है परंतु उसे इस बात का निश्चय नहीं रहता कि पद्मावती उसके प्रणय को स्वीकार कर लगी। इसके आगे पद्मावती रत्नसन भेट खण्ड में जब दोना का प्रथम मिलन होता है तो रत्नसन का यह विश्वास हो जाता है कि पद्मावती उस स्वीकार कर लगी। उसके विरह का दूसरा अंग समुद्र में दोना के बिछड़ जाने पर सामन आता है। यहाँ पर भाँदो का सच्च प्रेम की परख होती है।

रत्नसन की विरह भावना बस पद्मावती के लिए ही रही है। नागमती के प्रति उसके हृत्त में विरह की ईष्य भावा भी नहीं है। केवल एक ही स्थान पर इसकी हल्की सी जलज मिल जाती है जब रत्नसन चित्तोर लौटकर नागमती के उगाहना दो पर उसमें कहता है—

'नागमती तू पहिलि बियाही। कठि विछोट दहै जस याही।'

परन्तु हम रत्नसेन के कथन पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि सिंहलद्वीप में रत्नसेन को हम एकबार भी नागमती की याद करते हुए नहीं देखते । वह गहन पद्मावती के विरह में डूबा रहता है और फिर उसका साथ बलि ब्रूना करने में । रत्नसेन के वियोग की तीव्रता पद्मावती के प्रति ही दिखाई गई है ।

रत्नसेन के हृदय में हीरामन द्वारा पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुन विरह भावना का उन्मथ होता है जिसे आघात गुल्म अस्वाभाविक मानते हैं । रत्नसेन उस वर्णन को सुनते ही सुरन विरह वदना में व्याकुल हो मूर्छित हो जाता है । हाश में आन पर चाहि चाहि करन लगता है और पुन पद्मावती को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर राजपाट त्याग यागी वन सिंहल द्वीप की यात्रा पर निकल पड़ता है । वह यह सब निश्चय कर लेता है कि लौटूंगा तो पद्मावती का लेकर ही अन्यथा उसी के दरवाजे पर प्राण दे दूंगा—

जो रे जियों ता बहुरी मरौ तो आहि के बार ॥ १

माग की बाधाएं उस रच मान भी विचलित नहीं कर सकतीं ।^१ उसके मन में अब कोई भी अभिलाषा न होकर केवल पद्मावती के दर्शन की ही अभिलाषा है क्योंकि उसी ने उसे प्रेममाग का अधिक बांध दिया है ।^२ कुछ आलोचकों ने रत्नसेन के इस प्रेम और विरह को अस्वाभाविक माना है और यह निगम दिया है कि उसके इस विरह में मानवीय संवेदना युक्त गहन अनुभूति के दर्शन नहीं होते । यह अलीकिक अधिक प्रतीत होता है ।

उसकी विरहानुभूति में मार्मिकता का समावेश उस स्थल से होता है जहाँ वह शिवमंडप में पद्मावती के दर्शन कर उसके लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता है और समाधि लगा पद्मावती के नाम का जप करने लगता है । अतनाग का उसे पद्मावती मिल जाती है । दोनों का उड़ाह हो जाता है परंतु इसके बाद भी उसके विरह के एक नये रूप के दर्शन होते हैं । मुहागराज

१ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५९ ।

२ हो पद्मावती कर भिखमगा । दीठि न जाव समुद ओ गया

—वही पृ० ६० ।

३ न हों चहौ सरग न राजू । ना माहि नरक सति किछु बाजू ।

चाहा आहि कर दग्गन पावा । जइ कोठि आनि प्रेम पथ लावा ॥

को पचावती उसे तग बरन के लिए ईषत्काल के लिए छिप जाती है तो विक्षिप्त के समान प्रलाप बरन लगता है। यही पर पलकांतर विमोग है जिससे प्रेम की अनयता चोतिन होती है। यद्यपि यह विरह अस्वाभाविक और बमोचे का कहा जा सकता है। उसके विरह का भाविक रूप केवल उक्त समय पूर्णरूपेण उभरता है जब समुद्र में उन दोनों का विछोह हो जाता है। वह अतीव व्यर्त्त स्वर में विलाप करता है। वह सारे सुरा को पुकारता है कि वह उसका सहायता करें, जिससे समुद्र उसकी प्रिया को परावर्तित कर दे। वह ईश्वर से प्रायना करता है कि—

‘जानसि सब अवस्था भारी । जस बिछुरी सारस क जोरी ॥
एक मूए ररि भुव ओ पूजी । रहा न जाइ आव भव पूजी ॥
मूरत तपत बहुत दुख भरऊ । बरूपी माय बेगि निस्तरऊ ॥
मरौ सो लइ पचावति नाऊ । तुइ कर सार बरसि एक ठाऊ ॥
दुख सो प्रीतम भेटि क मुख सो खाव न बाइ ।

एहि ठाव मन उरप, मिली न बिछाहा होइ ॥’^१

रत्नसेन की यह विरहानुभूति यथाथ गहन और प्राजन है। जिसमें प्रेम की उदात्तता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरह की ‘यापकता का असा वणन जायसी ने किया है वसा अय किसी न नहीं। प्रमी के साथ प्रियतम भी भिन्न रहता है वह भी तडपता है यह पहले कहा जा चुका है। सूफी सिद्धांतानुसार जिस प्रकार जीवात्मा परमात्मा से मिलने के लिए विकल है, उसी प्रकार परमात्मा भी जीव से मिलने के लिए उत्सुक है। भारतीय परम्परा के अनुसार भी यदि गोपिकाएँ कृष्ण से मिलन के लिए उत्सुक हैं तो कृष्ण भी गोपिकाओं से मिलने के लिए उत्कण्ठित हैं। प्रेमाख्यानक काव्यों में सभी नायक नायिकाएँ विरह से व्याकुल हैं तथा उन्हें सयोग होने पर ही सुखमिला है। नागमती, पचावती और रत्नसेन आदि के विरह वणन में यही बात होता है कि सारा ससार ही प्रपंच समेत विरह से व्याकुल हो रहा है। नायक, नायिका, एक उपनायिकाओं का विरह एकत्व की ही सूचना देता है। एक प्रेम ही समस्त ससार विरही हुआ दुखी हो रहा है। जायसी का कहना है कि विरहाग्नि से

१ ‘बाहि पुकारी, का यँह जाऊ । गाँवे भीत होइ ररहि ठाऊ’

—वही, पृ० १८० ।

मृग अहमिनि तपता है तथा वपित-सा दिखायी देता है । क्षण म स्वयं और क्षण म पाताल हो जाता है परंतु तनिक भी चन नहीं पाता—

‘विरह के आगि सूर जरि काया । रातिहि दिवस जर आहि तापा ॥’

खिनहि सरग खिन जाइ पतारा । धिर न रहे एहि आगि अपारा ॥’

जीवात्मा ईश्वर का ही अंग है, इसलिए वह सदैव अपने मूल से मिलने के लिए तड़पता रहता है । यह विरह उसकी साधना में बड़ा सहायक होता है ; यह प्रेम की धीर को जगा देता है और पार आत्म चेतन को जगाती है । जीव के सजग हो जान पर सुरति जग जाती है जिससे पिउ पिउ के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूचता—

विरह जगाव दरद को, दरद जगाव आव ।

जीव जगाव सुरति को पच पुकारे पौव ॥

विरह के प चात मिलन का जो परम सुख होता है इसका प्रभी ही जानता है । दुख के बाल बादल हट जाते हैं और सुख का तारा उदित हो जाता है—

मिदुरता जब भेटे, सो जान जेहि नह ।

सुखस सुहेला उगव दुख शर जिमि मह ॥’

निष्कण यह है कि सासारिक दुखों को मिटाने का एकमात्र उपाय सुफी मत के अनुसार ईश्वराय प्रेम का भावना है । ईश्वरीय प्रेम के माधुर्य में ही जीवन की कटुता विलीन हो सकती है यह सूफी सिद्धांत की लौकिक उपादेयता है । इस प्रकार एक तथा न यात्म दोनों का समन्वय इस मत में प्राप्त होता है ।

जायसी सूफी कवि हैं । वे प्रेम के महत्त्व का जानते हैं । प्रेम की साधकता प्रिय के प्रति सभी भावनाओं के एक निष्ठ हो जान में है । मन की सारी वस्तियां सिमट कर जिन प्रियमयी हो जाती है ता प्रेम साधकता प्राप्त कर जाता है । मन की वस्तियां की यह एक निष्ठता विरह की स्थिति में ही संभव है । विरह के क्षण में प्रिय की स्मृति अधिक ताव हो जाती है । यह तीव्रता चित्त को एकाग्र करती है । ससार के सारे जाकपणों से हटकर मन प्रिय के

१ जायसी ग्रंथावली पृ० ७८

२ सत बानी संग्रह (दादू) भाग पहला, पृ० ८२,

३ जायसी ग्रंथावली पृ० ७६

५ | प्रेम का प्रभाव और महत्व

प्रेम ही ईश्वर है

जायसी ही नहीं अनेक मर्भी कवियों ने प्रेम को मानव जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली, व्यापक एवं दिव्य शक्ति के रूप में महत्व दिया है। प्रेम ही मनुष्य को देवत्व प्रदान करता है। प्रेम ही ईश्वर है।

कवि गणपति ने ग्रन्थारम्भ में सवप्रथम रतिरमण की स्तुति करते हुए लिखा है कि ब्रह्मा, हरिहर सभी को कुसुमशर ने विजित कर लिया है। यह सृष्टि विस्तार को सभाले हुए हैं विश्व की अभिव्यक्ति का कारण देव प्रथम बदनीय हैं।^१ लगभग इसी प्रकार के भाव रस रतन कवि 'पुहकर ने भी प्रकट किये हैं। उनका कथन है कि जिस तन में प्रेम प्रकट हो जाता है, वह अजर अमर हो जाता है। इस भाग का अंत पाना कठिन है। अनेक लोगो ने अनेक प्रकार से इसका गुणगान किया है।^१ यह सृष्टि प्रेम का ही प्रकट रूप है। यह बतलाते हुए कवि मन्नन ने कहा है कि प्रेम सृष्टि का अमूल्य रत्न

१ 'सुर नर पद्मग मणि बली, लक्ष चउरासी लोप ।

ब्रह्मा हरिहर कुसुमशर जिणि जिरया सवि कोय ॥

समल ज्यो मवि सृष्टिनु ए विण आवइ छेह ।

कारण विश्व बधारवा आदि उपायु एह ॥'

सम्पादक—एम० आर० मजमूदार, माधवानल कामकदला प्रबन्ध,

पृ० १ (१९४२)

२ जिहितन प्रम प्रगट तन कीनी । सो तनु अजर अमर कर दीनी ।

कठिन पथ जिहि अ त न पायो । बहुविधि विविधि बहुत विधि पायो ।"

—'रस रतन' स० डा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३९

(२०२० वि०)

है। उसी का जीवन ध्य है जिसके मन में प्रेम निवास करता है।^१ प्रेम की ज्योति से ही ससार में प्रकाश होता है प्रेम के समान सुंदर वस्तु ससार में कोई नहीं है।^२ जिसके हृदय में प्रेम का दीप जलता है उसका सम्पूर्ण जीवन उज्ज्वल हो जाता है।^३ रसमजरी के आरम्भ में भक्त शिरोमणि नन्ददास ने भी परम ज्योति ईश्वर को प्रेममय कहकर नमस्कार किया है।^४ और अततोत्तरा अगम अगोचर प्रभु को अतिनिकट लाने का मूल मन्त्र भी इसी 'प्रेम' को बताया है—

“अदपि अगमते अगम अति निगम कहत है जाहि ।

तदपि रगीले प्रेम ते निपट निकट प्रभु आहि ॥”^५

आलम ने लिखा है कि ‘जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम नहीं है वह मूर्ख एवं मतिहीन है। मनुष्य एवं पशु के मध्य प्रेम ही तो एकमात्र भेदक रेखा है। प्रेम के तेज द्वारा ब्रह्म ज्ञान की भी प्राप्ति की जा सकती है। मानव शरीर तो अधकूप सदस्य है। नह’ का दीपक जलन पर ही उसके रूप और गुणों का वास्तविक ज्ञान होता है।^६ पूण ब्रह्म भी प्रेममय है। अतः प्रेम को

१ ‘उतपति सष्टि प्रेम सो आई। सष्टि रूप भर प्रेम सोपाई ।

जगत जनमि जीवन भल ताही देय पीर उपजी जिय जाही ॥”

—मधुमालती स० डों० माताप्रसाद गुप्त मित्र प्रकाशन इलाहाबाद,

सन १९६१ पृ० २३

२ प्रेम जोति समसिष्टि अजोरा। दोसरन पाव पेय कर जोरा ॥”^७

३ प्रेम दिया जाके घर वारा। तोहिमम आदि अत उजियारा ॥”

वही पृ० २४-२५

४ प्रथमहि प्रनऊ प्रेम मय, परम ज्योति ओ जाहि ।

—नन्ददास ग्रन्थावली स० श्रीबजरत्नदास ना० प्र० सभा काशी,

प० १११५, स० २००६

५ वही, पृ० ४३

६ सो मतिहीन बज्य तनु होई। सग्रह नेहुन जीव कोई ।

मानुस पसु अतर यह अहई। मानव सोई नहु जो बहई ॥

ब्रह्मज्ञान पावै पुनि सोई। तिहि तन तेज नेह की होई ॥

अधकूप में देहु गुप्त प्रकट कोई नहि लखहि ।

जानै दीपक नेहु तब सब देख रूप गुन ॥”

—हिंदी प्रेम गाथा काव्य सग्रह स० गणेश प्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी

अकादमी, इलाहाबाद, पृ० २१३

ही सर्वोच्च मानना पड़ता है। 'प्रेम या इश्क के बिना इस ससार में क्वि नहीं हो सकती। जिसमें इश्क नहीं उसमें कुछ भी नहीं। यही कारण है कि मुल्का वजही ने 'इश्क का दर्जा सर्वोच्च स्वीकार करते हुए सवत्र उसका अस्तित्व स्वीकार किया है—

'बड़ा इश्क सबते दर्जा अहै । ने यक जान हो इश्क हरजा अहै ॥

जहाँ दो है वहाँ इश्क बिन रूप नहीं । नहीं इश्क कुच जिसमें वो कुच नहीं ॥'

जसमान ने प्रेम के अमरत्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'प्रेम रस का पान करने वाला युगयुगांतर तक जीवित रहता है।' क्योंकि वह प्रेम ज्योति सवप्रथम परमात्मा के ही मानस में उत्पन्न हुई थी। 'प्रेम के कारण ही उसने सृष्टि रचना की।' कवि कासिम शाह का विचार है कि इस भव सागर को पार करने का एकमात्र साधन ग्रीवा में प्रमपाश लगाना ही है। 'इससे भी आगे बढ़कर नूर मुहम्मद ने तो उस व्यक्ति को दोनों लोको का स्वामी स्वीकार किया है, जिसने अपने मन में प्रेम रस को जमा लिया है। प्रेममार्ग में जीवन का बलिदान करने वाले व्यक्ति चम हैं। शेष नितार तो यह मानते हैं कि मानव का जन्म ही प्रेममार्ग को समालने के लिए हुआ

१ 'पूरत ब्रह्म प्रेम मय जानहु । सब ऊपर प्रेमहि पहिचानहु ।'

आरम्भकृत इमाम सनेही, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा पृ० ११९ से उद्धृत

२ मध्यकालीन हिंदी और पंजाबी प्रेमसाह्याय, डा० ओमप्रकाश, पृ० १९७ से उद्धृत।

३ 'ओ जो प्रेम अभी रस पीया । मर न मार जुग जुग जीया ।

—चित्रावली, स० जगमोहन वर्मा, पृ० २३६

४ पहल उठा प्रेम विधि होये । उपजी जोति प्रेम के कीये ।'

—वही, पृ० ४

५ "आदि प्रेम विधिज उपराजा । प्रेमहि लागि जगत सब साजा ।"

—मध्यकालीन हिंदी और पंजाबी प्रेमसाह्याय पृ० ५ पर उद्धृत।

६ पासी प्रेम प्रीति की डारी । भव सागर से पार उतारो ।'

कासिम शाहकृत इस जवाहर, पृ० ४

७ 'अल्प प्रेम कारन जग कीहा, यय जो सीस प्रेम में दीहा ।

जाना जेहिक प्रेम यह हीया, मर न कबहूँ सो मर जीया ।

जा मन जामा प्रेम रस भा दोल जग को राय ।'

—चित्रावली स० श्यामसुन्दर दास ना० प्र० स०, काशी, पृ० ६

(१९०६ ई०)

और ईश्वर ने यह चाती बस ही सोंप रखी है जसे कि दीपक की बत्ती । ईश्वर उसी बत्ती में आकर छिप जाता है और शरीर को जला कर पुन प्रच्छन्न हो जाता है—

“प्रेम अग्नि तेहि काहु सभारा । रचा मनुस बहुविधि विस्तारा ॥

तेहि सोंपा वह प्रेम के चाती । दीपक माह घरा जस वाती ॥

तेहि वाती मेंह आप छिपाए । होय परछिन पुनि देह जराये ॥”

कवि सूरदास लखनवी ने प्रेम को अमर बताया है और लिखा है कि वेद और पुराण उसी का यशोगान करते हैं जिसका हृदय प्रेम के उल्लसन में उल्ला हो, अथवा वाणी भ्रम में पड़ जाती है । प्रेम के अतिरिक्त उसके पास कुछ भी गाने को नहीं है—

‘वेद वेद पुरानहि गाई । जिन मन पेय उरस उरसाई ॥

नाहित ऐसे गए हिरानी । प्रेम बिना । काछू न बखानी ॥”

कबीरदास जी कहते हैं कि जिसने प्रेम रस को नहीं चखा और चख कर उसका स्वास्वान्न नहीं किया, वह सूने घर का पाहुन है जस वह इस लोक में आया वैसे ही चला भी जायेगा । कबीर प्रेम को भवसतरणाय अलौकिक मानते हैं । वह इसी प्रेमकल्लोलिनी के पावन कूल पर दुलहन के लिए सदैव तयार रहते हैं—

‘अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाई ।

गूने केरी सरकरा, मठे मुसकाई ॥”

यह प्रेम सवसुलभ है परंतु इसका मूल्य चुकाने के लिए कोई रत्नराशि पर्याप्त नहीं । इसे प्राप्त करने के लिए शिर देना पड़ता है—

१ हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह स० गणेश प्रसाद द्विवेदी, प० ३२८,
(१९५३ ई०)

२ ‘प्रेम अमर यह मर न मारा । बुझे न प्रेम अग्नि बिनगारा ।’
नलदमन (सूर लखनवी) स० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० १९३

३ नलदमन (सूर लखनवी) स० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० १९३

४ ‘कबीर प्रेम न चक्षिया चखि न लिया साव ।

सूने घर का पाहुना, ध्यू आया त्यू जाव ॥’

—कबीर ग्रन्थावली, स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० १७

५ वही पृ० २९

“प्रेम न भेता उपज प्रेम न हाट विकाइ ।

राजा परजा जिस रूप, सिर दे सो ले जाइ ॥”^१

उपयुक्त उदाहरणों से प्रकट है कि मर्मी नवियों के लिए प्रेम ईश्वर का पर्याय है ।

इनकी दृष्टि में मानव के कल्याणाय प्रेम का वही स्थान था जो भक्त नवियों की दृष्टि में भगवान का उसमान न चित्रावली के अंतिम दोहे में प्रेम माग की महत्ता को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

“श्याम ध्यान भद्रिम सब जप तप सजम नेम ।

मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रति पार प्रेम ॥”^२

प्रेम के इसी महत्त्व को महाकवि जायसी ने पश्चाताप करते हुए राघव चेतन के मुख से भी कहलाया है—

‘कवि सो प्रेम तत बविराजा । झूठ साच जहि कहत न साजा ।’

मनुष्य बिना प्रेम के एक मुटठी धूल से अधिक कुछ भी नहीं ।^३ जायसी ने ब्रह्मावस्था की बुराई की है । कथं यत्, ब्रह्मावस्था में जीवन नहीं रहता और मानव मानस प्रेम नहीं कर सकता है वे अत्यन्त सतप्त स्वर में कहते हैं कि लम्बी आयु अभिशाप है—

विरिध जो सीस दुलाव सीस धुन तेहि दीस ।

बूढ़ी आऊ होतु तुम्ह किहपह दीह असीस ॥”^४

जीवन प्रभत्ता पद्मावती के सम्मुख समस्या दूसरी है । आयु का तकाजा प्रेम का है और समाज प्रेम में पर रखने से रोकता है वह करे तो क्या करे—

‘जोवन बचल दीठ है कर निवाज काज ।

धनि कुलवति जो कुल धर क जोवन मन लाज ॥”^५

और अंत में वह कुल का परि त्याग करने के लिए उद्यत सी है । यह सब

१ कबीर ग्रन्थावली, स० श्यामसुन्दर दास, ना० प्र० स० प० ७०

(१९२८ ई०)

२ चित्रावली, स० जगमोहन वर्मा, प० ८९

३ पद्मावती (स० डा० वासुदेव शरण अप्पवाल) प० ५६५

४ ‘मानुस पेम् भएउ बकुठी, नाहित बाह छार एव मूठी ।’

—जायसी ग्रन्थावली, प० ७१

५ वही, पृ० ३०२

६ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ७५

प्रेम प्रभाव के कारण ही हो रहा है ।

सृष्टि रचना प्रेम के कारण ही हुई है

नरमुहम्मद कहते हैं कि इस सृष्टि की रचना प्रेम के कारण ही हुई है ।^१
अगर प्रेम न होता तो सृष्टि की रचना न होती । जायसी भी कहत हैं—

‘सुमिरो आदि एक करताह । जेहि जिउ दीह कीह सताह ॥

कीहेसि प्रथम जोति परकासू । की हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥’^२

जायसी इस प्रेम को सरल सृष्टि में परियाप्त देखते हैं—

“रोव रोव ते बान जो फूटे । सूतहि सूत गिरि मुख छूटे ॥

ननहि चली रक्त की घारा । कथा भीनि भएउ रतनारा ॥

“सूरज बूडि उठा होइ साता । ओ मजठि टेसू बन राता ॥

भा बसत राती बन सपती । ओ राते सब जोगी जती ॥

भूमि जो भीनि भयउ सब गेह । आ रातें तहैं परिव पखेह ॥

राती सती अगिन सब काया । गगन मेघ राते नेहि छाया ॥”^३

अन्यत्र वे कहते हैं—

‘अस पर जरा विरह कर गठा । मेघ साम धूम जो उठा ॥

दाया राहु केतु गाथा । सूरज जरा चाँद और आधा ॥

ओ सब नखत तराह जरहीं । टूटहि लूक घरति मह परही ॥

“जरै सो घरती ठाबाह ठाऊ । दहकि पलासि जरै तेहि दाऊ ॥”^४

उपयुक्त वर्णित समस्त स्थितियों प्रेम के प्रभाव के कारण ही उत्पन्न हुई हैं । इस प्रेम में जब मनुष्य पड़ता है तो उसकी दशा अतीव दोचनीय हो जाती है । उसमें न जीते बनता है और मरते बनता है—

“कठिन मरन ते प्रेम व्यवस्था । न जिउ जिये न दसम अवस्था ॥”^५

महर्षि ने तो प्रेम के महत्व के विषय में कहने हैं कि जिसके हृदय में विरह ने घाव नहीं किया उसका जीवन धारण करना ही व्यर्थ है—

१ अल प्रेम कारन जग की हा । घनि सो सीस प्रेम मह दीहा ॥”

—इंद्रावती, स० श्यामसुन्दर दास, पृ० ८

२ जायसी प्रयावली पृ० १

३ वही पृ० ९८

४ जायसी प्रयावली पृ० १६३

५ वही, पृ० ४९

“मझन जो जग जनमि कै विरह न कीना चाउ ।

सूने घर का पाँहुणा जेउ आया तेउ जाउ ॥”^१

जायसी की प्रेमानुभूति सबसे अधिक तीव्र है। उनकी प्रभावती कहती है कि मैं प्रियतम के पास श्रृंगार करके जाऊँ। मुझे तो प्रियतम सबन ध्याप्त दिखायी देता है—

‘करि सिंगार तापह का जाऊँ। ओही देखहुँ ठावहि ठाऊ ।

नन माह है उहै समाना । देखो तहाँ नाहि कोउ आना ॥’

उसका दृढ़ विश्वास है।

“उहू वानन अस को जो न मारा । बधि रहा सगरो ससारा ॥”

किंतु सूरदास के छांदो में ये सारी बातें गोपनीय हैं। जो दहे जानता है, उसे ही ये बतलानी चाहिए किसी दूसरे को नहीं—

प्रेमी प्रीतम को मरम कहै न काहू पाँह ।

जान तहि जनाइए लोगन सो कछु नाँह ॥”^२

प्रेम सभी वस्तुओं को लावण्यमय बना देता है

जायसी की रचना पदमावत का प्रेमगाथा द्वारा या ‘अखरावट में वर्णित सिद्धांता द्वारा जिस प्रेम का परिचय प्राप्त होता है, वह अति उच्च एवं गाम्भीर्यपूर्ण है। उसके महत्त्व का ज्ञान हम सबप्रथम उस समय होता है जिस समय हीरामन ‘गज’ द्वारा पदमावती के रूप एवं गुण का संक्षिप्त समाचार प्राप्त होते ही उसके प्रेम में पड़कर वह उठता है—

तीनि लोक चीदहु खण्ड सब पर मोहि सूझि ।

प्रेम छाडि नहि लोन बिछु ओ देखा मन वूझि ॥”^३

अर्थात् अब मुझे तीनों लोक और चौदहो भुवन प्रत्यक्ष हो गये। मैंने अपने मन में समझकर यह दख लिया कि वास्तव में प्रेम के समान कोई भी वस्तु मुझ पर नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि किसी भी सात्त्विक वस्तु में ऐसी रमणीयता नहीं प्राप्त हो सकती जो प्रत्येक स्थिति अथवा दशा में भी

१ मधुमालती (भजन) स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० २००

२ जायसी ग्रन्थावली, पृ० १४३ ।

३ वही, प० ४३ ।

४ नलदगन (सूरदास लखनवी), स० डा० वासुदेव शरण अप्पवाल, प० ९१ ।

५ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३९ ।

एक जमाना होकर बतमाग रह । यह प्रेम की ही विशेषता है ।

३३३३ - मुहम्मद बाजी प्रेम के ज्या भावें क्यों गल ।

निल फूलाहि के संग ज्यो हाथ फूटायल तेल ॥ १

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम की बाजी किसी भी प्रकार मेली जाय उमम लाभ ही लाभ-हाना है । ज्ये तिल के दाने, पुष्पों के सहवास व उप लक्ष्य में यदि मेरे भी जान हैं तो अनौगत्वा उनका रूप मुगधित तेल के रूप में भी प्रकट होता है । प्रेम के कारण जयवा प्रेम के परिणाम स्वरूप दुख हो हा नहीं सकता । इसका तो नियम ही है-

‘प्रेम व आगि जर ओ बाई । दुख तेहि परन अविरया होई ॥’

अर्थात् प्रेम की उवाला में अपने को मस्मसात कर देने वाले का दुख कभी व्यथ नहीं जाता । कवि यहाँ व्यञ्जित करना चाहता है कि आध्यात्मिक प्रेम की उवाला में जलकर ही परमात्मा की प्रियतम से भेंट होती है अर्थात् आध्यात्म प्रेम की उवाला में ज्वलित होना व्यथ नहीं जाता । इस प्रेम के स्वरूप को महान ने भी स्वीकारते हुए कहा है-

‘प्रेम दीप जाके हिय बरा । ते सब आदि-अत उजियारा ॥

विरह जीव जाके घर होई । सदा अमर-पुनि मर न कोई ॥’

- ८ अथवा-

‘जनम जनम फन जीवन ताही । प्रम पीर जिय उपजा जाही ।

जेहि जगन यह विरहा भयऊ । निभुवा केर राख सो बहेऊ ॥’

उसके दुखों के साथ ही साथ सुख भी लगा ही रहता है जिस कारण उसके आनन्द में बाधा नहीं पड़ पाती-

दुख भीतर जा प्रेम मधु राखा । जग नहि मरन सहे जो बाखा ॥

प्रेम का मधु दुःख से आवेष्टित है ।

१. प्रेम की पीर व साथ ही ओ माधुय अनुभव में आता है उसका स्वाद इतना तीव्र होता है कि उसके समक्ष ससार में मरण का कष्ट मँहते मँहते मिट जाता कोई अमममव बात नहीं । जो प्रेम माग में शिर गही रखता उमका

१ जापसी अथावली पृ० २५ ।

२ वही, पृ० ६६ ।

३ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २५ ।

४ मधुमालती पृ० २९

५ जापसी अथावली पृ० ४० ।

इस ससार में जीवन ही व्यर्थ है। प्रेममार्ग के महत्त्व को जानता है जिसने देखा है। जिसने वह मार्ग नहीं देखा है वह उसके महत्त्व को नहीं जानता है—

‘जो नहि सोस प्रेम पथ लावा । सो प्रियिमी भँह काहेक आवा ।

प्रम वार सो कहै जो देखा । जान देख का जान बिसेखा ॥’^१

इस कारण प्रेम नितांत एक समान समझा जाता है और इसकी एकर सता ही इसके वास्तविक रूप से सौंदर्य का कारण है। इस अनुपम गुण के ही संयोग से—

‘मानुष प्रेम भएउ बकुठी । ना हित काह छार भर मूठी ।’

इस प्रेम के ही कारण मनुष्य अमरत्व तक प्राप्त कर लेता है। नहीं तो उस मूठी भर छार मात्र से निर्मित मिट्टी के पुतले से हो ही क्या सकता था। अतएव कवि को इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि जो प्रेम मार्ग पर पथिव होकर पार पहुँच गया वह पुन मिट्टी में ही मिलन के लिए इस क्षण भगुर पारीर को धारण नहीं कर सकता। वह अमर हो जाता है—

‘प्रेम पथ जो पहुँच पारा । बहुरिन मिल आइ एहि छारा ॥’

परन्तु प्रेम जितना ही सुंदर और मनोहर है उसका मार्ग उतना ही विकट एवं दुर्गम है क्योंकि इस प्रेम मार्ग पर चलने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने साधन की सफलता एवं कठिनाता को अपने विचार से एकदम निकाल दे। ऐसा करने के कारण प्रायः देखा गया है कि उसके मार्ग का ढंग ही विभिन्न हो जाता है। वह जितना ही विपरीत मार्ग से चले और जितना ही कष्ट भोगे उतना ही स्वयं को उद्देश्य की पूर्ति करता हुआ पाता है इसीलिए जायसी कहत है।

‘उलटा पथ प्रेम के वारा । बढ सरग जो पर पतारा ॥’

प्रेम का मार्ग ही विपरीत है क्योंकि इसके द्वारा स्वर्ग जान का अधिकारी

१. वही पृ० ४० (क) सूफी का यह मेहमेदो की व्यंजना अनेक रूपों में मिलती है—‘जगत जीम जीवन फल ताही। प्रेमपीर जिय उपजा नाही—मधुमालती प० ११, (ख) ऊँचा बठक प्रेम का जोरहीय सत होय। सो पाव सशय नहीं आय पाय सब होय ॥—प्रेमरस गेख रहीम।

२. जायसी प्रभावली प० ७१।

३. वही, पृ० ६२

४. वही, पृ० ९८

नहीं हो सकता है जिसने पहले अपने आपको पाताल में डाल दिया है । इस प्रेम पथ का अनुसरण करने से पूर्व ही यह सोच लेना आवश्यक होता है कि जब हमें अपने दुःख सुख की कोई परवाह नहीं करनी है । इसीलिए सिद्ध हो जात समय माग में पड़ने वाले विस्तृत समुद्र को पार करने की कठिनाई का भोरा सुनकर प्रेमी राजा रत्नसेन, सहसा वह उठता है—

“राज कहा कीह मैं प्रेमा । जहाँ प्रेम वह कुसल समा ॥”^१

अर्थात् जब मैं प्रेम माग ग्रहण कर लिया है तो अब कुशल भय वा सुख सुविधा की बात सोचना ही व्यर्थ है । प्रेमवता को दुःख बेचना ही पड़ता है । कवि ने इस बात को स्पष्ट करने के लिए जनक स्थला पर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

‘प्रेम फाद जो परा न छूटा । जीउ दीह पै फाद न टूटा ॥
गिरगिट छद घरै दुख तेता । खन खन पीत, रात दिन सेता ॥
जान पुछार जो भा बनवासी । रोव रोव परे फद मगवासी ।
पौनह फिरि फिरि परासो फाँदू । उडि न सक जहसा मा मादू ॥
‘मयो मयो अह्निसि चिल्लाई । ओही रोस नाग ह ये घाई ॥
पडुक सुआ रक वह ची हा । जेहि गिउ परा चाहि जिउ दी हा ॥
सीतिर गिउ जो फाद है, निसिपुकारै दोख ।

सा कित हँकारि फाद गिउ (मेल) कित मारे हाइ माथ ॥”^२

अर्थात् प्रेम के फदे में जो पड़ गया वह कभी नहीं छूटता । प्राण देने पर भी उसके फदे का टूट जाना कठिन है । गिरगिट को अनेक कष्ट झेलकर भी क्षण क्षण पर पीत लाल अथवा श्वेत रंग का हाना पड़ता है । जिसके कारण उसके पंख पर फदे के बिह तक पड़ जाते हैं । वह यदी होकर उड़ने में असमर्थ हो जाता है । वह अह्निनि मयो मयो बह कर चिल्लाया करता है और क्रोध में दौड़ दौड़ कर सर्पों का भक्षण किया करता है । वह फद का

१ जायसी ग्रंथावली पृ० ९२ ।

२ वही पृ० ३९-४० ।

३ प्रीति फद का वर्णन अथ सप्त कवियों ने भी किया है—

(क) ‘प्रीति दया बस है ससारा । प्रीति फाँद सब फाद निहारा ।

—नूर मुहम्मद कृत अनुराग वासुरी, पृ० ११७ ।

(ख) ‘भूला सब जगत कर घषा । पडा जा जान प्रेम कर पदा ।’

—नासिब शाह कृत हस जवाहिर पृ० ७२ ।

मिह। इसी प्रकार पढ़ने, शुक और नीलकण्ठ पक्षियां कभी घोवा में पड़ा दीखता है जिसके कारण उन्हें प्राण तक निमार करने पड़ते हैं। तीतर क गते पर लिखने वाला बिना इना जगुम मूवक है कि मानो उसके द्वारा इस ब्रह्मन स्वीकार करना पड़ना है अथवा मुक्त होना पर भी लड़कर मरना ही पड़ना है अर्थात् हम कहा भी गति नहीं मिलती। भ्रमरों ता इस माग का पथिक होकर एकत्र नुट ही जाता है। उसे प्राणा की भी आहुति देने पर छत्र कारा नहीं मिलना। इसीलिए इस माग का अनुमरण भ्रमरों उमी को करना चाहिए जो उन्नीसी यती योत्री तपस्वी अथवा सयासी हो। क्योंकि भोग विलास में पड़े हुए को ही यदि यहाँ सफलता मिल सकती तो ये लोग भोगों का परित्याग कर कठिन तप की साधना करने पर आसक्त क्या होते? प्रम प्राप्ति की सिद्धि केवल साधना करने मात्र से नहीं हो सकती इसके साथ साथ तप की साधना भी आवश्यक है। हम वही अनुभव कर पाता है जो अपने गिर को पहले घड़ से जलग कर डालता है। केवल कयनी से कुछ नहीं होता ॥ धी निवालने के लिए दधि को पढ़े भली भाँति मथने की आवश्यक पड़ती है। जब तक अपने आप को भी दूधन-दूधते न छो दे तब तक प्रेम के मम को नहीं पा सगता। प्रमपहाड़ की रचना ही कुछ ऐसी विचित्र है कि उस पर चढ़ने वाले को परा द्वारा न चढ़कर सिर के बल जाना पड़ता है। यह वास्तव में मूली का माग है। जिस पर या ता चोर चढ़ाया जाता है अथवा ममूर। हल्लाज सदश ब्यक्ति का बलिदान हाता है—

१ जानहि भवर जो तहि पथ लूटे। जीउ दीह औ दिए न छटे ॥

~ ~ ~ + ~ ~ ~ + ~ ~ ~ + ~ ~ ~ +

१ ओहि पथ जाइ नो होइ उन्नीसी। जोमी जती तपी सयासी ॥

१ भोग जोरि पाइते वह भोगू। तजि सो भोग बोइ करत न जोगू ॥

१ साधन सिद्धि न पावज जो लहि साधन तप्य।

सोई जानहि वापुरे जो सिर करहि नलप्य ॥

का मा जोग कहानी कथे। निकस न घिउ बाजु दधि मथ ॥

जो लहि आयु हेराइन कई। तो लहि हरत पाथ न सोई ॥

पेय पहार कठिन विवि गढ़ा। सो पचढ सीस मो चढ़ा ॥

पथ सूरिह कर उठा अकूर। चोर चढ बिचन ममूर ॥ १

प्रेम के लिए समर्पण आवश्यक है

जिसने भ्रमर का रंग धारण उही किया । जो दीपक देखकर पतंगा नहीं बन गया जिस पर भूग का प्रभाव नहीं पड़ा अथवा जिसने अपने प्राणों का समर्पण नहीं किया और न जा प्रेम के कारण तपाया जाकर एक हो गया अथवा जिसके मानस में भय का लोभ न हुआ, उसे प्रियतम के प्रति सच्चा अनुसंग हो ही नहीं कहा सकता, न वह उसके लिए आग या पानी में पड़ ही सकता है । जायसी कहते हैं—

“ना जेइ भएउ मोर कर गमू । ना जेइ दीपक भएउ पतंगू ॥
ना जेइ कर भूग क होई । ना जेइ आनु मर जित सोई ॥
ना जेई प्रेम ओटि एक भएउ । ना जेइ हिऐ मास उग गएऊ ॥
तहि का बाहिय रहब जित । रहै जो पीतम लाग ॥
जो वह गुन छेइ घेंसि का पानी का आगि ॥”

प्रेम में पड़ जाने पर प्रेमी की अवस्था ही विचित्र हो जाती है । प्रेम के प्रभाव द्वारा अभिमूढ होने पर प्रेमी की भनौबत्ति इस प्रकार परिवर्तित हो जाती है कि इसे हिताहित की पहचान हो नहीं रह जाती—

“उपजी प्रेम पीर जेहि आई । पर रोषक होइ अधिक सो आई ॥

अमृत बात कहन बिष जाना । प्रमद वचन मीठ क माना ॥”

अर्थात् जिस मानव मानस में प्रेम की कसक बठ गयी उस यदि समझाया हुआ जाय तो उस पर प्रभाव विपरीत ही पड़ता है । पाठा कम होने के स्थान पर बढ़ने लगती है । प्रेमावेश में उसे अच्छी से अच्छी बात बुरी जान पड़ती है और वह केवल प्रेम सम्बन्धी वार्तालाप को ही अपने अनुकूल समझा करता है । वह अपने शरीर तक की रक्षा के विचार से इस प्रकार सदासीन हो जाता है कि उसे किसी बात की चिन्ता ही नहीं रहती—

“नेहि के हिये प्रेम रग जाभा । का तेहि भूख नीद बिसरामा ॥”

अर्थात् जिसके हृदय में प्रेम न अपना रंग जमा लिया है उसके लिए भूख निद्रा अथवा विश्राम प्राप्त करना असम्भव है । उसे शांति प्राप्त हो ही नहीं सकती । उसकी मासिक स्थिति का वर्णन करता हुआ स्वयंसेवक रत्नसेन पद्मावती से कहता है हे प्यारी ! प्रेम वास्तव में, मदिरा के समान है । जिसके पान करने से जीवन मरण का भय एकदम जाता रहता है । इसका पान जिसने एकबार भी कर लिया उसके लिए यह ससार कुछ भी नहीं है । और वह प्रेम मद के कारण मस्त होकर दतरतत भ्रमण किया करता है । इसकी मादकता का प्रमाण वही जानता है जो इसका पान करता है और पान करके

भी अतृप्त ही रहता है और पीते पीते निद्रामग्न हो जाता है । इसकी प्राप्ति जिसे एक बार भी हो गई वह इसके अभाव में रह ही नहीं सकता और सदा इसके लिये अधीर हुआ फिरता है । अपनी सारी सम्पदा को तिलाजलि देकर मानो वह मन में निश्चय कर लेता है कि चाहे सबस्व चला जाय किंतु मैं इस रस का आस्वादन नहीं छोड़ सकता । अतएव वह अहनिग स्वयं को इसी रस में सत्कृत किये रहता है और अपने लाभ हानि का ईष्यमान भी चिन्ता नहीं करता ।^१ यहाँ पर हम सूफ़ियों का स्पष्ट प्रभाव पाते हैं क्योंकि सुरा और सुन्दरी की मायता सूफ़िया में ही है ।

प्रेम-द्वैत को अद्वैत कर देता है

प्रेमी अपने को एक प्रकार से पूर्णरूपण खोकर अपना अस्तित्व ही नष्ट कर देता है । जिसे स्पष्ट करते हुए जायसी ने राजा रतनसेन की अवस्था का चित्र इस प्रकार अंकित किया है—

“बूँद समझ जस होइ मेरा । गा हेराइ अस मिल न डेरा ॥

रगहि पान मिला जस होई । आपहि खोइ रहा होइ सोई ॥”

अर्थात् जिस प्रकार बिन्दु का सिन्धु से समागम हो जाय और बहुत बूँदों पर भी प्राप्त न हो सके अथवा जिस प्रकार ताम्बूल पत्र रंगो में मिल कर अपना अस्तित्व खो बैठे उसी प्रकार राजा ने अपने को खोकर प्रेम में मिला दिया और प्रेमी एव प्रेमास्पद दो से एक हो गये । प्रेम के प्रभाव का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है ? जिसका हृदय प्रेम बाणों से बिद्य है वही उसके मम को जान ॥ है—

“प्रेम घाव दुख जान न कोई । जिहि लाग जान प सोई ॥”

इसी प्रकार मसन ने भी लिखा है—

१ सुनु । घनि प्रेम सुरा, के पिए मरन जियन उर रहै न हिए ।

जेहि मद तेहि कहाँ ससारा, की सो घुमि रह, की मतवारा ।

सो पै जान पिय जो कोई पो न अधाइ जाइ परि सोई ।

जा कहँ होइ वार एक लाहा, रहै न ओहि बिनु ओही चाहा ।

अरम दरब सो देह बहाई, की सब जाहु, न जाहु पियाई ।

रातिहुँ दिवस रहै रस भीजा, लाभ न देख, न देख छोजा ।

जायसी ग्रंथावली, पृ० १४१

“कठिन पीर यह जान सोई । प्रेम विछोह पराजेहि हाई ॥”^१

मसूर अल हल्लाज ने ठीक ही कहा था । “ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के बीच से होकर गुजरें ।”^२ क्रातिदर्शी कबीर पर भी सूफियों का प्रभाव पूर्णरूपेण पड़ा था । उनके प्रेम के आदर्श सूर हैं । कबीर के अनुसार प्रेम पथ पर चलना अस्तिधारा पर चलना है प्रेम बहुत बड़ी चीज है । बड़ी चीज को पाने के लिये साधना भी बड़ी होनी चाहिए । प्रेम का यह व्यापार कुछ खाला का घर नहीं है । जब जी में आया चल पड़े और बात बात पर मचल गये तथा करमाईश पूरी हुई । यहाँ तो वही प्रवेश पान का अधिकारी है जो पहले सिर को उतार कर घरती पर रख दे—

“कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि ।

सीस उतारे हाथि करि सो पसे घर माहि ॥

कबीर निज घर प्रेम का, मारण अगम-अगाध ।

सीस उतारि पगतलि धरे, सब निकट प्रेम का स्वाद ॥”^३

जायसी ने प्रेम पथ पर चलने की बात को कुछ इसी प्रकार से यत्न किया है—

‘गगन दिष्टि सो जाय पहुँचा । प्रेम अविष्ट गगन ते ऊँचा ॥

घुब ते ऊँच प्रेम घुब उभा । सिर देइ पाँव वेद सो छुआ ॥’^४

खाला का घर समझाने वालों को कबीर ने सावधान किया था । जायसी ने भी कहा है कि वहाँ पहुँचने के लिये सिर काटकर उस पर पैर रखना पड़ेगा । ‘करब पीरीत कठिन है काजा’^५ प्रेम के पहाड़ पर वही चढ़ सकेगा जो सिर (अभिमान, अहंभाव का परित्याग कर) देकर चढ़ना चाह । उस पथ पर काम, क्रोध, लुब्धादि और बढमारी करते हैं । अधिक की उनसे क्षण क्षण सावधान रहने की आवश्यकता होती है । यह प्रेम पीर प्रबोध से सम्बद्धित होता है—

१ मधुमालती, पृ० ३५४

२ Out line of Islamic Culture A M A Shushtry P 311

हिन्दी अनुवादक—म० यु० जायसी और उनका काव्य, शिवसहाय पाठक,
पृ० ४१९ से उद्धृत ।

३ कबीर प्रयावली स० श्री श्यामसुन्दर दास, पृ० ६९

४ पद्मावत स० डॉ० धामुदेवगर्ण अग्रवाल पृ० १३८

५ जायसी प्रयावली, पृ० ५०

“उपजी प्रेम पीर जेहि माई । परबोधत होइ अधिक सो आई ॥”^१

अल फराबी का कथन है कि “ईश्वर स्वयं प्रेम है । सृष्टि रचना का मूल प्रेम है । सृष्टि की इकाइया प्रेम के सहारे प्रेम में महास्रोत में जो पूरा और सर्वोच्च है, सब जान के लिये पूर्णरूप से जुड़ी हुई है ।”^२

चित्ररेखा जायसी की भवधेष्ठ कलात्मक कृति है । इसमें भी जायसी ने अपनी प्रेम साधना का सविस्तार विवेचन किया है । चित्ररेखा में जायसी ने स्पष्ट कहा है—

“जब लगी विरह न होइ तन हिये न उपजइ पम ।

तब लगी हाथ न आवतप करम घरम सत नेम ॥”^३

अथात विरह का हृदय में उभरना आवश्यक है । पश्चात्त की समस्त कथा का केन्द्र बिंदु प्रेम साधना ही है । डा० रामचंद्र तिवारी भी कहते हैं ।

भावात्मक दृष्टि से सूफी रहस्य साधना का केन्द्र बिंदु प्रेम है । एक सूफी साधक ने इस सत्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रेम ही सब रसों का मूल है ।^४ अगर इश्क न होता इतना आलस सूरत न पकड़ता । इश्क के बगैर जिदगा बवाल है । इश्क को दिल दे देना कमाल है । इश्क बनाता है इश्क जलाता है । दुनियाँ में जो कुछ है इश्क का अलवा है । भाग इश्क की गर्मी है, हवा इश्क की बेचनी है, पानी इश्क की रफ्तार है, खान इश्क की क्रियाम है । मीत इश्क की बेहोशी है, जिदगी इश्क की होशियारी है, रात इश्क की नींद है दिन इश्क का जागना है । मुस्लिम इश्क का जमाल है, काफिर इश्क का जलाल है, नेकी इश्क की नुरबत है, गुनाह इश्क से दूरी है, विहिगत इश्क का लोक है, दोखल इश्क का जोक है ।^५ शेखतुरहान मेहदी गुरु ने ही उन्हें प्रेमध्याना के पथ को दिखाया था—

‘प्रेम पियाला पण लखावा । आपु चासि मोहि दू द चखावा ॥

१ जायसी ग्रंथावली पृ० ५१

२ A M A Shushtry Outline of Islamic Culture, P 311

हिंदी अनु० मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य शिवसहाय पाठक, पृ० ४२० से उद्धृत ।

३ स० शिवसहाय पाठक, चित्ररेखा, पृ० ९८

४ मध्ययुगीन काव्यसाधना डा० रामचंद्र तिवारी पृ० १३२

५ उस दूफ अथवा सूफीमत पृ० चंद्रवली पाण्डेय पृ० ११६

प्रेम पियाला जिह पिया, किया प्रेम चित बध ।^१

साचा मारग जिह लिया तजि झूठा जगमग ॥”^२

जायसी ने प्रेम की महत्ता को प्रदर्शित करते हुए स्वयं को प्रेम मधु और भ्रमर कहा है—

‘मुहम्मद मलिक प्रेम मधु भीरा ।’^३

उन्होंने प्रेम प्रीति का अन्त तक निर्वाह किया है—

“हाथ पियाला साथ सुराही । प्रेमप्रीति लइ ओर निवाही ॥”^४

प्यारे सैयद अशरफ की कृपा से उनके मानस में प्रेम दीप प्रज्ज्वलित हुआ था—

“लेसा हिमे प्रेम कर दीया । उठी जोति मानिर मल हीया ॥”

हीरामन शुक द्वारा वर्णित पद्मावती के नखशिख वणन के अनन्तर राजा रत्नसेन के हृदय में प्रेमभाव का उदय होना है । अपना राजपाट सुख वभव भोग आदि का परित्याग करके जोगी बन जाता है और सब तक प्रयत्न करता है, जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेता । चित्तौर से सिंहल तक का माग एक प्रकार से प्रेम पथ ही है । इस पर वह बिघ्नी अंतराया और प्रेत्यूहा का प्रत्याख्यान करता हुआ गतिमान होता है—

“प्रेम सुनत मन भूल नजारा । कठिन प्रेम दइ सो छाजा ॥

प्रेम फाँद सो परा न छूटा । जीउ दीह बहु फाँद न छूटा ॥”^५

पद्मावती का रूप वणन सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है । इस प्रेम प्रभाव की भला नीन जान सकता है—

“प्रेम धाव दुख जान न कोई । जेहि लागै जानै प सोई ॥

परा सो पेय समु द अपारा । लहरहि लहर होइ बिस मारा ॥”^६

प्रारम्भ में प्रेम प्रायः वासनात्मक होता है । विरह की तपान्ति में प्रज्ज्वलित होकर प्रेमी द्वादावर्णी कम्पन की तरह काँतिमान हो जाता है । हीरामन शुक से पद्मावती ने कहा कि यदि मैं चाहूँ तो उससे आज ही मिल सकती

१ चित्ररेखा स० ५ शिवसहाय पाठक पृ० ७४

२ वही पृ० १०३

३ चित्ररेखा पृ० ७५

४ जायसी सप्तशती—पृ० ७

५ वही, पृ० ९७

६ वही, पृ० ४९

हैं परन्तु अभी तक उसे मेरे प्रेम का मम पात नहीं है । मुझे अभी पूणत ज्ञात नहीं है कि वह प्रेम के रम म पूणरूपण रग चुका है या नहीं—

“ऐसो मरमु न जाने मोरा । जाने प्रीति जो अरि के जोरा ॥

हों जानति ही अब ही काँचा । ना वह प्रीति रम चिर राँवा ॥

ना वह भयउ मलय गिरि वासा । ना वह रवि चडि चढ़ा अकासा ।

ना वह भयउ भोर के रगू । ना वह दीपक भयउ पतगू ॥

ना वह करा भूग के होई । ना वह आपु मरा जिउ सोई ॥”

इस प्रकार जब दोनों का मिलन हो जाता है तो प्रेमी मर कर भी अमर हो जाता है ।

प्रेम एक ऐसा अमर, एव शाश्वत सत्य है जिसका कभी भी अस्त नहीं होता । अलाउद्दीन और राघव कहाँ है ? रत्नसेन और हीरामन कहाँ हैं ? वह सुरुषा पद्मावती कहाँ है ? वे सब नहीं रहे पर उनकी प्रेम कथा ससार में है—

‘कहु सुरुष पद्मावति रानी । कोइ न रहा जग रही कहानी ।

धन सोई जस कीरति जासू । फुल भर पर मर न बासू ॥”

प्रेम भाग के पथिक के लिए हृदय की पवित्रता परमावश्यक है । कल्याण युक्त हृदय से प्रेम प्रभु की प्राप्ति असम्भव है । महादेव जी ने रत्नसेन को उपदेश दिया था कि दुःख सहो परन्तु प्रेमपथ पर गतिमान रहो—

‘कहेसि न रोव, बहुत ते रोवा । अबईसर भा दारिद सोवा ॥

अबत सिद्ध भरसि सिधि पाई । परपन भया छूटि गल काई ॥

वही बात अब ही उपदेसी । लाउ पथ भूले पर देखी ॥”

प्रेम पथ के पथिक के हृदय में क्रोध, ईर्ष्या आदि के लिए स्थान नहीं रहता । वह सहिष्णु उदार और तपस्वी हो जाता है—

“गुरु कहा चेला सिद्ध होई । प्रेम बार होइ करहु न कोई ॥

जाकहु सीस जाइ की बीज । सग न होइ उम जो भीज ॥

जेहि जिउ पेय पानि पा सोई । जहि रग मिल ओहि रग होई ॥

जो प जाइ पेम सो जूझा । कित तप करहि सिद्ध जो छूझा ॥

सीस दीह प अगमन, पेम पानि सिर मेलि ।

अब सो प्रीति निबही, चलो सिद्ध होइ सेलि ॥”

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९९

२ वही, पृ० ३०१

३ वही पृ० ३०१

४ वही पृ० १०४

प्रेम की अग्नि को प्रज्ज्वलित करना जीवन का लक्ष्य है

प्रेम निरंतर जलने वाली वह ज्वाला है जो प्रेमी के हृदय में विरह का संचार करके उसे उज्ज्वल एवं पवित्र कर देती है । जायसी ने कहा है—

“मुहम्मद चिनगी प्रेम व सुनि महि गगन उराइ ।

घनि विरही औ घनि हिया तह बस अग्निनि समाइ ॥”^१

जिसके हृदय में विरह की निष्पत्ति होती है वह व्यक्ति ध्य ध्य हो जाता है । ‘प्रत्येक स्थान पर ज्योतिमय नग उत्पन्न नहीं होते । सबत्र जल में मुक्ता नहीं मिलती । प्रत्येक वन में चंदन के वृक्ष नहीं होते ।”^२ वैसे ही प्रत्येक मानव मानस में प्रेमजनित विरह की भावना भी उत्पन्न नहीं होती । भाग्यशाली व्यक्ति ही इस विरह जनित प्रेम प्रभाव का अनुभव करते हैं—

“यल यल नग न होहि जेहि जोती । जल जल सीप न उपनहि मोती ।

वन वन विरिछ न चंदन होई । तन तन विरह न उपजै सोई ॥”^३

जायसी व्यष की तपश्चर्या तथा बाह्याढम्बर को महत्त्वहीन समझते थे । मन में विरह का होना वे प्रेम प्रभु के लिए आवश्यक मानते थे । बिना विरह के प्रेम नहीं उत्पन्न होता—

“का भा परगट क्या परबारे । का भा भगति भुईं सिर मारे ॥

का भा जटा भभूत चढ़ाये । का भा गेरू कापटि लाये ॥

का भा भेस दिगम्बर छांट । का भा आपु उलटि गए काँट ॥

जो भेरवाहि तजि मीन तू गहा । ना बग रहै भगत वे चहा ॥

पानिहि रहै मञ्जि औरादुर । टांगे नितहि रह पुनि गादर ॥

पमु पछी टांगे सब खरे । मसम कुम्हार रहै निज भरे ॥

बट पीपर सिर जटा न धोरे । अइस भेस की पावसि मोरे ॥

जब लागि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम ।

तब लागि दाध न आव तभ करम धरम सत नेम ॥”^४

जायसी बाधा, डर और प्रेमरहित साधना की निस्सारता के विषय में लिखते हैं । प्रकट रूप से काया प्रखालन से कोई काम नहीं होता घरा पर

१ जायसी प्रयावली पृ० ७८

२ शले शले न मणिक्य मौक्तिक न गजे गजे ।

साधव नहि सबत्र चंदन न वन-वन ॥

३ जायसी प्रयावली पृ० १०६ ।

४ चित्ररेखा सं० अ० शिवसहाय पाठन, पृ० ९८

शिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भमूत धारण करन का कुछ भी महत्त्व नहीं। गरिब वस्त्र धारण करन से कोई अभिप्राय नहीं दिगम्बर योगियों के समान भी रहना व्यर्थ है। कटक पर उस्तान डबन करना और साधक होने का स्वाँघ करना भी व्यर्थ है। मोन ग्रहण करना भी व्यर्थ है। बकुले भी मोन बनकर भक्त होने हैं। नीर म ही तो मत्स्य और ददुर रहते हैं। गादुर पक्षी भी तो स्वयं को टांगे रहता है। कुम्भकार भी तो भस्म से सना रहता है। क्या कट या पोपल के वक्ष म कम जटाएँ हैं ? अरे भोलें ! ऐसे वेश में कहीं कुछ प्राप्त होता है जब तक हृदय म बिरह नहीं होता। तब तक प्रेम की निष्पत्ति नहीं होती है। बिना प्रेम के तप कम धम और सत नेम की प्राप्ति समी अर्थों में नहीं होगी। इसमें यह पूणकषेण स्पष्ट है कि जायसी सहज प्रेम साधना को ही सर्वथेष्ठ मानत हैं।

प्रेम के साथ बिरह का नाश्वत सम्बंध बताते हुए प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए डॉ० रामचंद्र तिवारी कहते हैं। प्रेम की लता के साथ बिरह की अग्नि का सम्बंध स्वाभाविक है। प्रेमी को बिरहाग्नि भी सरस प्रतीति होती है। सच्चा कवि वही है जिसके काय में प्रेम मधु का अमूल्य रस भरा हुआ है, जिसकी वाणी में बिरह की बेधता है। प्रेम का कवि ही सच्चा कवि है, उसके शरीर में न रक्त रहता है न मांस। वह समस्त व्यक्त प्रकृति को अपक्त और रहस्यमयी सत्ता के प्रेम में याकुल और मिलने के लिए उत्सुक देखता है। उसे सबत्र प्रेम की लालिमा दिव्यायी देती है। वह पराचर को रहस्यमयी सत्ता के प्रेम वाणी से विद्व अनुभव करता है। जायसी ऐसे ही प्रेमकवि थे।^१ जायसी ने स्वयं कहा है—

“मुहम्मद कवि जो प्रेम का ना तन रक्त न मांसु।

जेइ मुख देखा तइ हमा सुना तो आए आंसु ॥”

प्रेम के अभाव में भानी साधनार्य और पाण्डित्य व्यर्थ हैं

बिना प्रेम भाव के जीवन निस्तार है। जिस मानव मानस में प्रेम नहीं, उसमें कोई (प्रक्ति या ईश्वर) किस प्रकार आ सकता है। भला सुने गाँव में कोई जाता है—

‘बिना प्रेम जो जीव निवाहा । सुने गाँव गाँ आव काहा ?’^२

१ मध्ययुगीन काय साधना डॉ० रामचंद्र तिवारी, प० १०४

२ जायसी प्रभावली प० ९

३ चित्ररेखा, स० शिव सहाय पाठक, पृ० १४७

मलिक मुहम्मद जायसी प्रेमपथ के महान् साधक थे । हनुसला नामा में भी उहान प्रमपथ की महत्ता को दृष्टिपथ में रखा है । जायसी ससार का असार मानते थे । उनका जीवन संदेश है कि ससार में रहकर मानव के लिए जो कुछ भी कारणीय है उसे कर लेना चाहिए । उसे प्रेम प्रभु की आर गति मान जाना चाहिए । उसे प्रेम स्वयं को खो देना चाहिए । अततो गत्वा इम जगत के जजाल को छोड़कर जीव को जाना ही है—

कर ले आजु अहे जो करना । घघा ठाडि जाखिर है मरना ॥^१

जब जीव प्रेम प्रभु से मिलने जाता है तो उसके साथ इस असार ससार से घ घा, पोधा आदि कोई भी वस्तु नहीं जाती केवल प्रेम ही जाता है—

‘घ घा पाधि जाइव नहि साथ’^२

जायसी प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि करोड़ा पोषिया का अध्ययन करके सार मानव परलाक वासी हो गया परंतु काइ भी पंडित नहीं हुआ । पण्डित वही हुआ जिसने प्रेम की पुस्तक को पढ़ा और समझा

‘कोटिब पोधी पंडि मरे पण्डित माने कोई ।

एक अच्छर प्रेम का पढ़ सो पण्डित हाई ॥’^३

प्रातिर्णी कबीर ने भी प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है—

‘बधीर पोधी पंडि-पंडि जग मुवा पण्डित भया न कोई ।

डाई अच्छर प्रेम का पढ़ सो पण्डित होई ॥’^४

जायसी कहते हैं कि इस जगत में प्रेम ही सब कुछ है । प्रेम के द्वारा ही मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी होता अगर उसने प्रेम नहीं किया तो वह एक मुठ्ठी राख के सिवा जीर क्या है ?^५ जामी की एक कविता में कहा गया है कि इस ससार में तुम सबका उपाय कर सकते हो लेकिन एकमात्र प्रेम ही ऐसा है जो तुम्हारे अहं से भी तुम्हारी रक्षा करेगा ।^६

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी ने स्थान स्थान पर प्रेम के

१ चित्रगाथा म० शिवमहाय पाठक प० १३५

२ वृत्ति प० १५२

३ वृत्ति प० १४९

४ कबीर ग्रंथावली डा० मानाप्रसाद गुप्त प० ६५

५ मानुस प्रेम भयउ बकुठी । नाहित काइ छार एक मुठी ॥

—जायसी ग्रंथावली पृ० ७१

६ जायसी डा० रामपूजन त्रिवारी प० ८५

महत्त्व का स्पष्ट किया है । वही प्रेमी जीव के लिये अग्नि भी च दन है^१ और कभी प्रेम सुरापान कर देने पर जीव को जीवन मृत्यु के भय से मुक्त घोषित करते हैं ।^२ प्रसिद्ध सूफी कवि रुमी ने कहा है—

‘ It is the flame of love that fired me

It is the wine of love that inspired me ’

यह उत्कृष्ट प्रेम ही साधक को साध्य तक पहुँचा सकता है । इसीलिये जायसी ने प्रेम कथा के माध्यम से प्रेम के दिव्य स्वरूप की प्रतिष्ठा की है और सचमुचे यह घोषित किया है कि तीनों लोक और चौदहो भुवन में प्रेम को छोड़कर और कुछ भी सु दूर नहीं—

तीन लोक चौदह खण्ड सब पर मोहि भूषि ।

प्रेम छाडि किछु और न लोना जी देखी मन भूषि ॥^३

१ जेहि जिय पम च दन तेहि आगी ।

—जायसी ग्रंथवली पृ० ६४

२ ‘ सुनु ’ घनि प्रेम सुरा के पिए । भग्न जियन डर रहै न हिय ॥

—वही, पृ० १४१

३ मध्ययुगीन का ये साधना डा० रामचंद्र तिवारी पृ० १२३ पर उद्धृत ।

४ जायसी ग्रंथवली, पृ० ३९

मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेमतत्त्व

मधुर भाव मानव मन की सहज वृत्ति की परिणति है। इस भाव में भक्त और भगवान्, ब्रह्मा और उसकी शक्तियों के पारस्परिक मधुर भाव वधन की अभिव्यक्ति होती है। मधुर भाव की सम्प्राप्ति के लिए अनुरामी मन की आतुरता, निस्सीम आनन्द सागर में निमग्न रहकर सतत रसास्वादन की आकांक्षा सर्वत्र पायी जाती है। इस भाव को जानने के लिए प्रेम दृष्टि आवश्यक है। यह दृष्टि प्राप्त कर लेने पर ज्ञान द्वारा अगम्य सत्ता प्रेम में बँधकर प्रत्यक्ष अनुभव का विषय बन जाता है। इस भाव की विलक्षणता यह है कि भगवान् स्वयं प्रेम स्वरूप होकर भी प्रेम के याचक बने रहते हैं। ये स्वयं रस स्वरूप हान हुए भी रस के अभिलाषी हैं और स्वयं आनन्द स्वरूप रहते हुए रस पाकर ही आनन्दित होते हैं।^१

मधुर भाव का सस्यान जीवात्मा और परमात्मा का सहज विलास, ब्रह्मा, और उसकी शक्तियों की आनन्द केलि भक्त प्रेयसी और भगवान् प्रियतम की प्रेम-लीला ही है। सबदा से विभिन्न साधना मार्गों द्वारा इसी द्रव्य विषयक प्रेम प्रतीति को लीला के दुष्पद रस से परितप्त किया गया है। ऋग्वेद के कई मंत्र घोषित करते हैं कि सृष्टि का आदिस्तोत्र साम अर्थात् मधु का कोई अनन्त समुद्र है जिसकी मधुमान उमि अर्थात् आनन्दमयी स्रहरी ही जीवन है।^२

सोम व्यत्यक्त सरस, सुस्वादु एव तीव्र हाता है जो माधुमनि दत्त मानव प्राण में मधुर आनन्द का उभेग करता है जिससे प्राण परितप्त होता है।^३ द्रव

१ तैत्तिरीयोपनिषद्-२/७

२ समुद्रादन्तिमधुमा उदारदुर्गाणा रुममृतत्वमानत — ऋग्वेद ४/५/१

३ स्वादुर्गिलाम मधुमा उतायं तीव्र विलास रसवां उतामम् — ऋग्वेद ६/४७/१

भरपूर प्राणतत्त्व उस स्वादिष्ट, मधुमान तीव्र और रसवान 'साम' के पान के लिए आतुर रहता है ।

वदिक साहित्य में अ यत्र भा 'मधु' शब्द परमात्मा के लिए 'यव'हृत किया गया है । ऋग्वेद में ही एक स्थल पर ऐसा प्रसंग आता है जिसमें दध्यष्ट अथ वण ने स्वयं मधु ब्रह्मा से सम्बद्ध ज्ञान को अश्विनीकुमारा के प्रति 'मधुविधा' के रूप में ही दिया था^१ जिसकी चर्चा बृहदारण्यकोपनिषद् में की गयी ।^२ फलतः कहा जा सकता है कि परमात्मा ही सत्र कुछ सारतत्त्व है, सबका अंतिम लक्ष्य है तथा वहीं सच्चा परमानन्द है । उसमें लीन होना सभी का परम ध्येय होना चाहिए तथा उससे मिलन की चेष्टा ही सबके लिए मधुर भाव कहला सकता है ।^३ यही ब्राह्मी स्थिति है जिसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है और जिसकी अनुभूति भी शृंगारिक जैसी बतलाई गई है ।^४

मानव मन को आप्लावित करने वाली रति कई प्रकार से मानवीय सम्बन्धों द्वारा प्रत्यक्षानुभूत होती है । रति के दो क्षेत्र—भोग और भक्ति है । इन दोनों क्षेत्रों में शांत दास्य सरय वात्सल्य और दाम्पत्य (मधुर) भाव के सम्बन्ध प्रमुख माने गये हैं ।^५ इन पाँचों में मधुरभाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें आत्म समर्पण भाव का चरमोत्कृष्ट अर्थात् प्रेम की आसक्ति और अत्यधिक उत्तरदाता विद्यमान रहती है । इसी परिप्रेक्ष्य में क्रमशः गाता प्रीता, प्रेयसी अनुकम्पा और कांत पांच प्रकार की भगवदविषयक रति होती है । गातभाव में विरक्ति से ये सेवक भाव में अनुवृत्ति का सरयभाव में प्रीति का वात्सल्य में स्नेह की प्रधानता है । मधुरभाव में इन सब का समावेश हो जाता है । इसके अनिरक्त इसमें प्रियतम की सुमधुर रति प्रदान करने की विशेषता रहती है । शृंगार रस में सर्वाधिक माधुर्य होने के कारण मधुर भक्ति अर्थात् प्रेमभक्ति सर्वश्रेष्ठ है । प्रेमभक्ति गुणरहित कामनारहित, प्रतिक्षण बदनवाला

१ दध्यष्टहय मध्वाववणा वामश्वस्य थीष्णा प्रयदासवाच ऋग्वेद १/११०/१२

२ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/३/०१

३ Vedic Culture Swami Manjdevananda Giri P 361

४ श्रीमद्भगवद्गीता २/५५-७२

५ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/१२१

६ चतुर्थ चरित्तमत्त मध्य लोका, पृ० २५२

७ सा भक्ति साधन भाव प्रमापति त्रिधान्तिता^६

विच्छेद रहित तथा स्वसवेद्य है । इसे पाकर प्रेमी प्रेम की ही देखता है, प्रेम को ही मुनता है चिंतन करता है ।

निष्कपत मधुरभाव का वास्तविक स्रोत भक्तिशास्त्र है । इस प्रकार भगुरभक्ति भक्त के विमल मानव से निःसृत दिव्य प्रेम की बह उज्ज्वल रस की धारा है जिसके प्रवाह में लौकिक प्रेम का विषयानंद अपने समस्त कलुषों का प्रक्षालन कर अलौकिक प्रेम के ब्रह्मानंद में परिणत हो जाता है । लौकिक प्रेम का पारलौकिक प्रेम में रूपांतरित हो जाने का तथा लौकिक प्रेम प्रतीका द्वारा अलौकिक प्रेमाभियोजन का यही रहस्य है ।

माधुर्य भाव में सरसता, मधुरता प्रेम की तीव्रता तथा अखण्डानंद का आस्वाद विद्यमान रहता है । अतः साधको हेतु अत्यंत स्पृहणीय है । इसमें साधक का ताभाव गापीभाव और सखीभाव में मधुरता का आस्वादन करता है जिसमें प्रेम के अनुभूति की तीव्रता तमयता की दृष्टि से का ताभाव सर्वश्रेष्ठ है । हिंदी भक्ति साहित्य की सभी धाराओं पर मधुर उपामना का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है ।

हिंदी भक्ति साहित्य में मधुरोपासना

हिंदी साहित्य में सबसे पहले निगुण भक्ति धारा का उल्लेख किया जाता है । इस भक्तिधारा में भी परमसत्ता को प्रिय रूप में देखा गया है । उसे प्रेम का विषय बनाया गया है । प्रेम के आधार पर उससे अद्वैतता स्थापित की गई है । अतः निगुण भक्तिधारा में भी मधुरभाव की साधना का स्वस्व लक्षित किया जा सकता है ।

निगुण सत्ता की भक्ति में मधुर भाव

निगुण सत्ता में अग्रणी बबीरदास ने अपने को राम की बहुरिया और राम को अपना प्रिय मानकर मधुभाव की अभिव्यक्ति की है । बबीरदास राम की इस प्रेम साधना में मधुर भाव की साधना के सभी तत्त्व प्राप्त होते हैं । प्रिय का सौंदर्य चित्रण, प्रिय मिलन की आतुरता मिलन प्रसंगों की उदभाषना प्रेम चर्या, मिलन के आनंद का अनुभव प्रिय वियोग वियोग व्यथा में प्रिय व स्वस्व का ध्यान आनंदता और अतंत प्रिय का नाश्वर सन्निध्य प्राप्त कर उनमें अभिदात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेना यह सभी कुछ बबीर की प्रेम साधना में लक्षित होता है । सगुण सत्ता की मायता नंदन व कारण बबीरदास प्रेम शीला का बह प्रत्यक्ष लोकव्यापी विस्तार न लिखा सके जो कृष्ण भक्तों एवं रामभक्तों न दिखाया किन्तु तत्त्वतः उनकी साधना में मधुरभाव की

साधना की मौलिक विशेषता में विद्यमान है ।

विष्णु के अवतार राम कृष्ण को लेकर वष्णुभक्ति की दो शाखाएँ हो गयी । कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा । कृष्णभक्ति शाखा में मधुरभाव की उपासना को अधिक महत्व दिया गया है ।

कृष्ण काव्य में माधुर्य भाव

भगवान् कृष्ण गोपिया के साथ नित्यलीला में रत रहते हैं और अपनी गङ्गयमाधुरी क्रीडामाधुरी वनमाधुरी, विग्रहमाधुरी का पान भक्तों को कराते हैं । क्रीडामाधुरी में गोप लीला सर्वश्रेष्ठ है । वेणुमाधुरी के जादूभरे प्रभाव से सभी परिचित हैं । इस वेणु संगीत को सुनकर तो गाय पक्षी, भग और वक्ष तक पुलकित हो जाते हैं तब कौन मुग्ध न हो जाय ।^१ कृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानकर उनकी भक्ति के प्रचारक निम्बार्काचार्य विष्णुस्वामी और माधवाचार्य थे ।^२

कृष्णभक्ति का माधुर्य पक्ष सख्य या दाम्पत्यभाव पर आधारित है । इनमें राधाकृष्ण समान रूप से आलम्बन और आश्रय रूप में चित्रित हुए हैं ।^३ अतः कृष्ण का रूपमाधुर्य भी उसी तमयता, पूणता और विपण्णता से हुआ है जिस भावलीनता, विस्तार और पूणता से राधा का ।

कृष्ण का रूप सौंदर्य विविध रंगों, अभूतपूर्व कल्पनाओं अलौकिक प्रभावा तथा अभिनव ज्योति रश्मियों को लेकर प्रत्यक्ष होता है । राधा की जीवन सुषमा भी इतने रंगों में नहीं क्षणिकी दीखती । नायक और नायिका यह रूप चित्रण कृष्णकाव्य की मौलिक विशेषता है । इस रूप चित्रण के मूल में मधुरभाव की साधना ही प्रधान कारण है । मधुर भाव की इस साधना को प्रत्यक्ष और 'यापक' आधार देने के लिए प्रेमचर्या को ही माध्यम बनाया गया है । प्रेमचर्या के अंतर्गत प्रियदर्शन प्रेमोदय पूर्वराग मान प्रिय के आकर्षण का प्रभाव तथा प्रिय समागम के अनेक अवसरों एवं प्रसंगा की उदभावना की गई है । राधा और कृष्ण की प्रेमचर्या को कृष्ण भक्तों ने मधुरभाव की साधना का प्रतीक बनाया है । कृष्ण के जीवन विकास में आज प्रकार की लीलाओं की कल्पना वस्तुतः इस मधुर भावना को 'यापित' देने की दृष्टि से की गयी है । गादोहन गोचारण चौरहरण दधिदान माखनघोरी आदि लीलाएँ मधुर

१ श्रीमद्भागवत, १०/२९/४०

२ अष्टछाय और बल्लभ सम्प्रदाय—जीनदयालु गुप्त-५० ६५, भाग-१

३ राधावल्लभ सम्प्रदाय—विजयेन्द्र स्नातक, पृ० २१०-११

भावना का मूल नरती है। इस मधुर भावना को मूल करने का सवश्रेष्ठ आधार रासलीला है।

रासलीला

रासलीला महाचिति का नतन है। यही सौन्दर्य, उल्लास, चेतना और आत्मलीलता की झलक है। महाचिति का महासौन्दर्य अल्पज्ञ जीव के लिये अलभ्य है। इसे भक्त सुलभ बनाने के लिए ही महाप्रभु बल्लभावाय न पुष्टि माग की स्थापना की।^१ पुष्टजीव को ही भगवान की अनुकम्पास्वरूप महाचिति का यह महासौन्दर्य प्राप्त होता है। रास में ब्रह्म और जीव का मिलन होता है। इसमें जीव के अहं का तिरोभाव और भगवान के सायुज्यभाव का आविर्भाव होता है। राधा और गोपियों को त्याग कर कृष्ण का अतर्धान हो जाना यह सकेतित करता है कि वह अपने सौन्दर्य और जीवन का अहंकार न हो।^२ मिलन और सम्भोग

मिलन शृंगार में नायक नायिका के गोपनीय विलास का चित्रण रहता है। उद्दाम नाम चम्पाएँ, केलि क्रीडा, अभिसार मान मनुहार आदि रति के बाद की अवस्था का चित्रण—ये सब एकांतिक पक्ष में समायोजित किये जा सकते हैं। स्वामिनी के रति सुख में रसासव का पान ही तो उन साधकों की सबसे बड़ी सिद्धि है जिसके समस्त प्रकार के ऐश्वर्य तिरस्कृत हो जाते हैं, यहाँ तक कि मोक्ष भी।

सम्भोग मिलन के दो रूप उपस्थित होते हैं—प्रथम सखी या दूती द्वारा भेंट कराना और राधा का केलि भवन या सकेत स्थल पर पहुँचाना। द्वितीय, नायक-नायिका (कृष्ण राधा) का स्थाय सम्भोगाश्रय मिलना।

मूर की राधा में सघन और सखीव अधिक नहीं पाया जाता। राधाकृष्ण दोनों ही समान नाम वात्सर और रति सन्निध हैं। प्रथम भेंट में ही राधा के उरोजो और नीवि पर कृष्ण के आवुल हाथ पड़ते हैं।^३ प्राय सभी कवियों ने मर्यादाहीन अदलील चित्रण किया है।

१ मूर सौरभ—मृ-नीराम समा पु० ३११

२ मूरसागर—पद १७०६ १७११ १७१८ तथा १७२०

३ गोपी उल्लिख गही जदुराई।

जयहि सरोज धरयो श्रीपद पर सब अमुमति गई आई ॥



बाहू जो सबसोरत नीध पल्लव में बस बसाई।—मूरसागर, पद १३००

भक्तों की रसलीनता

कृष्ण काय का माधुर्य पक्ष नावलीनता का ऐसा लोक है जहाँ अपरिमित मूच्छना की स्वर प्रकार है अनन्द विस्मृत में अहंभाव का तिरोभाव है । लीला माधुर्य में वासनाओं का अतल विलय है ।

माधुर्यभाव की भक्ति को भागवतकार, महाप्रभु धृत य वल्लभाचार्य, जीवगोस्वामी और अन्य कृष्णभक्त कवियों ने इसीलिए श्रेष्ठ माना क्योंकि दाम्पत्य ही सर्वाधिक लीन करने वाला भाव है । जिस रस में देवता स्वयं परब्रह्म विष्णु हैं वह कितना जान द समझ हो सकता है इसकी कल्पना स्वयं की जा सकती है । इसीलिए रतिभाव को माधुर्य नाम लेकर भक्ति में सर्वोच्च स्थान दिया गया ।

माधुर्य भाव को काय के किसी भी रूप में—चाह भक्ति या शृंगार परला जाय वह अनुभूति की चरम अवस्था पर स्थित है । आलम्बन उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव आदि सब उस अनुभूति का आकार देने के उपकरण हैं । नित्य परि वतनशील सी न्य की अनुभूति—दगा में सयोग और वियोग दोनों का आस्वादन गोपिया करती रहती है । क्षण भर को कृष्ण का रूप नयना में और मन में समाया, उसकी मूच्छना भरी अनुभूति हृदय में की तो सयोग सुख और क्षण भर वह बदल गया तो वियोग दुःख । इस स्थिति में आश्रय की विवर्गता तटपद का रूप सुधा पान की आकांक्षा और जाकलता है उस कल्पना और अनुभूति करने पर भी क्षण में आवद्ध है ।

सयोग के पश्चात् वियोग पक्ष का भी विचार करना समीचीन है । माधुर्य भाव में विरह की कल्पना प्रायः सभी काय प्रवृत्तियों में की गई है, जिस कबीर ने भी प्रेम विरह कहा है ।^१ विरह के प्रेम और ज्ञान दो पक्षा का संकेत केवल कबीर में है । कबीर में विरह के जिस स्वरूप का ज्ञान विरह कहा गया है वसा सूफी काय में भी पाया जाता है । इस प्रकार विरह के दो पक्ष—ज्ञान और भाव हुए ।

ज्ञान विरह एक जानकारी मात्र है तथा भाव विरह जाग्रत की अनुभूति । आश्रय की विरहावस्था देख पड़ या सुन कर सामाजिक में भी वही अनुभूति होती है । आश्रय के नावलीनता से सामाजिक का तादात्म्य होता है । यही विरह रस दगा का पहुँचता है ज्ञान विरह रस दशा का नहीं पहुँचता । भाव विरह मरम के माघणाकरण की सामर्थ्य है ज्ञान विरह में नहीं । ज्ञान विरह

साधन में विरह जगान में उद्दीप्त का काम करता है। इसीलिए जान विरह अनभिनित या आरापित है और भाव विरह स्वानुभूत।

जान विरह की अभिव्यक्ति सूरदास व विरह चित्रण में मिलती है। कृष्ण का विरह सम्पूर्ण मातुल अनुभव कर रहा है।^१ विरह निमग्ना ही प्रेम की सपनता अनयता, उत्सव, वासना के तिरोभाव, आत्मा के ज्योति जागरण और सबस्व की कमीटी है। मिलन मुग्न काम है और विरह साधना प्रेम। वास्तविक अधम रति धि मुग्न या ब्रह्मो-मुग्न विरहहीनता ही में होती है।

निगुण मार्गा कबीर दादू और सूफी कवि जायसी आदि न जिस प्रकार विरह का विविध प्रतीका द्वारा अभिव्यक्त किया है उसी प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने किया है।

रामकाव्य में माधुर्य भाव

सीता परब्रह्म भगवान राम की परा आत्मादिनी शक्ति है। श्री भू, लीला आदि की वह अधिष्ठात्री है। इच्छा, ज्ञान, काम तीनों शक्तियों में समन्वित, मूल प्रकृति रूप में वह परम पुरुष राम का भोग्या है। परब्रह्म की रमणेच्छा से उसका आविर्भाव हुआ है। राम और सीता एक परमतत्त्व के दो रूप हैं। वह परमतत्त्व पति पत्नी व गरीर धारण कर आत्म विलास करता है। सीता ने राम को सतुष्ट करने के लिए अपने जग से ३३ सखियाँ उत्पन्न की हैं। रासलीला में राम का प्रसन्न करने के लिए जनत सखियाँ विहार करता है।^२

राम नाम स्वयं ब्रह्मवाचक है। तत्त्वज्ञानी यागी नित्य राम में रमते हैं। सबभूता में रमन के कारण परब्रह्म का मुख्य नाम राम है। मूल रूप में सभी कुछ राम में निहित है। वक्ष प्रणव का मूल है।

राम का दो रूप है—एक मर्यादा पुरुषोत्तम और दूसरा लीला पुरुषोत्तम। अयोध्या में वह दिव्य सत्वालन की सामर्थ्य से सम्पन्न ऐश्वर्यगुणा का प्रकाश करते हैं—यह उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप है। साकेत में वह नित्य सी दय सुपमा रूप यौवन शृंगार माधुर्य रूप से विहार और क्रीड़ाएँ करत हैं। यह उनका लीला पुरुषोत्तम माधुर्य रूप या तरिक है—यही राम का आत्मरूप या स्वरूप है।^३ राम पुरुष और सीता प्रकृति हैं। साकेत की माधुर्य लीला प्रकृति

१ भ्रमरगीतासार—पद—२७८ ३४२ ३२५

२ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवती प्रसाद सिंह—पृ० २८९—९०

३ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—भगवती प्रसाद सिंह—पृ० २७७

पुरुष की नित्य लीला है ।^१ दाना ही इसा प्रकार अभिन्न हैं जस सूर्य और उसकी प्रभा ।^२

राम की सहस्रो परिणीता जा व अतिरिक्त रास मे भाग लन वाली, युगल सङ्कार की विलास केलिया का प्रवच करन वाला, उनकी नित्य सवा करने वाली जोर इन विहार, विलास, काम क्रीडाओ की झांकी कर 'तत्सुख' और स्वसुख की अनुभूति करनेवाली अनेक सखियों की सख्या भी रसिक साहित्य में विस्तार से दी गई है ।^३

रामभक्ति के अतगत् मधुरभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति राम और सीता की प्रेमलीला का माध्यम से की गई है ।

सीता-राम माधुर्यलीला

रामभक्ति में माधुर्य भाव व तीन रूप मिलत हैं—

(१) युगल विलास, जिसमें सीताराम के शृंगार कलि विलास 'अष्टयाम, नृत्यगान, पङ्ग, रास आदि' का चित्रण रहता है । इसका दशन से प्राप्त सुखानुभूति ही तत्सुख भावना कहलाता है । भक्त सीता की अनुभूति को अपनी अनुभूति मानता है । वह सभी रूप में या द्रष्टा रूप में इस लीला सुख को प्राप्त करता है ।

(२) बहुरमणी विलास, इसमें राम दक्षिण नायक रूप में चित्रित है । इस विलास में राम के दो रूप मिलत हैं—एक तो अराध्य राजा मुनियों गधवा की पुत्रियों और अनकवशी व यात्रा के साथ विहार, जो राम का परिणता

१ यात सीता राम तत्त्व एक रूप दुइ ।

मूल प्रकृति है अ य तनर नहि सक्त हुई ॥

—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० २९७ (उद्धृत)

२ सीता राम विना नव राम सीता विना नहि ।

श्रीसीतारामयारेम सम्बध शाश्वतो मत ॥

—वही उद्धृत, पृ० २९७

३ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० २९१-९२

४ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—भगवती प्रसाद सिंह पृ० ५२६ पर (सीतारामगण शुभलीला, पृ० २७) उद्धृत ।

५ ज्ञाना अली, सिय केलि पदावली रा० भ० उ०, पृ० २२०—वहाँ, पृ० २२७ पर उद्धृत ।

मधुर भाव की साधना और जायमी का प्रेमतरंग । १७१

पलिया है' दूसरे उन रमणियों के साथ जिनसे राम का विवाह नहीं हुआ है, या जिनकी निश्चित स्थिति प्रेमिका रूप में निरूपित नहीं। यह राम रमणी सम्बन्ध बसा ही है जमा रीतिवालीन गोपी-कृष्ण। यह परकीय प्रेम बड़ा जायगा। निज को परिणीता या परकीया दोनों रूप में पहुँचाकर रसिक भक्त इस सुख भावना की अनुभूति करता है।

(ग) एकात्मिक विलास जिसमें भक्त राम से सीधा प्रेमिका या पत्नी का सम्बन्ध मानकर मिलन विरह की अनुभूति करता है। यह अनुभूति की स्वभाव भावना के अंतर्गत है। यह प्रेम भावना सूफिया के ढग की है।

राम रसिक साहित्य में विरह-मय का चित्रण नहीं मिलता। उनकी मा यता है कि सीता राम नित्य मिलन त्रीढालीन हैं।

रसिक भक्तों द्वारा चित्रित सीत राम के लीला विलास का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह सारा का सारा भाव कृष्ण भाग्य का अनुकरण है। जायमी का प्रेम तरंग

प्रेमाश्रयी साधक हिन्दी साहित्य के अंतर्गत 'सूफी सत' के नाम से प्रसिद्ध है। ये सूफी उजड़ी हुई यस्तिमा की बसाते हुए जन जन के हृदय में प्रेम का बीज बोते हुए अपन उस प्रिय प्रभु को प्राप्त करने की चंटा करते हैं, जो नित्य सौंदर्यवान एवं आनंद का सागर है। सूफिया की दृष्टि में प्रेम ही इस प्रिय को प्राप्त कराने का एकमात्र अवलम्ब है। इनके द्वारा विरचित साहित्य प्रेम गाथा नाम से अभिहित किया गया है।

प्रेमगाथा का बाजभाव प्रेम है। इस प्रेम का दूसरे शब्दों में रति कहा जा सकता है। रति का प्रेरक है सौंदर्य। सौंदर्य ही आकर्षण का कारण है। सौंदर्य ही पान उपयोग की साधना जगाता है। यही लालसा वासना का महयोग पाकर उत्कट कामना, सर्वस्व और रति या प्रेम का रूप

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—मगवती प्रसाद सिंह पृ० ५२८ पर उद्धृत—

(अ) कृपानिवास लखन पचीसी, रा० भ०, उ० प० ११५

(ब) दयामसखे—पदावली, वही, पृ० ३६९ उ०

(स) रामसखे—जानकी नोरल माणिक्य वही प० ३२३

२ (अ) रामसखे, पदावली, रा० भ० उ० पृ० ३२५

(ब) दयामसखे—पदावली वही, पृ० ३६९

(स) वही, पृ० ३७३

(द) युगलान पारण, वही, पृ० २७७

११० (उद्धृत)

उद्धृत, पृ० ११०

पृ० ५१६ पर

वही,

धारण कर लेती है ।

हिंदी प्रेमगाथा-या म आलम्बा को प्रेयसी की भाव धरती से उठाकर पत्नी के गरिमा सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया है । इसमें सन्देह नहीं कि प्रेयसी रूप में मिलनी पठा, प्रेम की तीव्रता वाम कातरता विरह की तीव्रता को सदा अधिक ज्वलान रहता है, पर चिर तन मिलन, अटूट सामुज्य, निरंतर एकात्मकता, अक्षय तत्प्रीतिता, अनंत सम्भोग सुख मुलभता पत्नी में ही रहती है ।

आत्मा परमात्मा के प्रतीक रूप में भी आलम्बा (परमात्मा) पत्नी रूप में ही सूफी भक्ति के अधिक अनुबल है । फारसी सूफी साहित्य में अमर (किंगार) को भी आलम्बन माना गया है ।^१

सौंदर्य

सौंदर्य चित्रण दो तरह से किया जाता है—परम्परा नृत्य गित वणन और प्रमगानुसार भाव का अधिक रसात्मक और उत्कृष्ट वनान के लिए रूप चिह्न चित्रण ।

सूफी साहित्य में मांग^२ उराज^३ मवो और कटास^४ का मौल्य चित्रण किया गया है । यह नृत्य गित वणन परम्परागत है । कभी कभी ये प्रभाव साम्य भावात्मक में सहायक होने की अपेक्षा विराधी हो जाते हैं ।^५ सूफी साहित्य में वर्णित सौंदर्य निरूपण से रतिभाव के उद्दीपन में न ता सहायता ही मिलती है और न नायिका के सम्पूर्ण या सम्मिलित सौंदर्य का मुग्धकारी प्रिय ही सामन आता है । पाठक उपमानों की लम्बी भीड़ में भटक जाता है, सौन्दर्यनिभूति का अवसर ही उस नहीं मिलता ।

सूफी नायक प्रेमपथ में बधटक और आस्थावान पथिक है । ससार की कोई विघ्नबाधा उसे नहीं रोक सकती । प्रेम का आधार रति का आलम्बन,

१ तसद्वुफ अथवा सूफीमत प० १०३

२ जायसी प्र यावली रामचंद्र शुक्ल प० ४१

३ वही प० ४६

४ हिंदी प्रेमगाथा का य संग्रह (चित्रावली) प० ११४

५ जायसी प्र यावली प० ४७

६ जायसी द्वारा चित्रित पदमावती का अंश—

‘राता जगत देखि रगराती । रुहिर भरे आछहि बिहसाती ॥

वही, प० ४४

भावुकता और कल्पना का विद्याम, अभिलाषा का आकर्षण क्षेत्र और अधुना मोक्ष सीमा प्रेयसी ही समस्त प्रयामा की पहुँच है समस्त मधुप का लक्ष्य है । उसकी एक झलक भर के लिए प्रेमी साधक वैसा आकुल रहता है—

“दरसन दखे बार नहि, रोम रोम मय नैन ।

नोद न आवत निशि कह, वामर परत न चन ॥”^१

यह प्रेम इस जन्म का नहीं मनादि का है । साधक अपने साध्य की दस्त ही पहचान लेता है और प्रेम विद्वज हो जाता है । प्रेम की मर्यदा यही है ।

जायसी की साधना न प्रेम की शक्ति से सांसारिक पति पत्नी के संयोग परमात्मा आत्मा के मधुर मिलन की आँकी का प्रत्यक्ष करत हुए प्रेममार्गियों का एक नयी दिशा भी दी और प्रेम के अलौकिक आनन्द का प्रतिपादन भी किया । सांसारिकता से प्रेमी का सम्बन्ध न हान के कारण इन प्रेमियों न मसार को उस परम प्रभु के प्रेम का प्रसार ही मान लिया और भगवत प्रेम में सराबोर हो गये । इस प्रेम के कारण अम्बल, मधुर, अरुण रूपवान् ताम्रवर्ण अग्निप्रकाश दुग्ध जामुन सूती सिंहासन, काँटा फूल और मृत्यु जीवन घन जाता है । कितना सामर्थ्यवान् है यह प्रेम जिसने जन्म का चेतन और गुण को सरस बनाकर रस सागर में डुबो दिया । गाणिया इसी प्रेम में मतवाली हो गई थी और राधा ने दमी प्रेम में श्यामसुन्दर के हृदय को जीत कर उनका नित्य संयोग प्राप्त कर लिया था ।

जायसी का इश्वरो मुख प्रेम पदमावन में अपने सम्पूर्ण छवि के साथ उपस्थित हुआ है । उसमें प्रियतम के प्रेम में वशीभूत उनकी आत्मा प्रारम्भ से ही अपने प्यार के वियोग में तटपती हुई प्रतीत होती है । इस प्रकार जायसी की उपासना माधुप भाव से प्रेमी और प्रिय के भाव से है ।^२ जिस प्रेमगाथा के सहारे जायसी ने अपने प्रेम सिद्धांनों का प्रसार किया उसका एकमात्र कारण या अपनी साधना मधुर रूप में उपस्थित करना । यह प्रेमगाथा दीपावा है किन्तु इसका अन्तर में परममयागी प्रभु के संयोग की अपार राशि छिपी है । जिसके हृदय में उस पाने की टास उत्पन्न हो जाय वही सच्चा साधक है और उसे प्राप्त भी कर सकता है । पदमावन काव्य का रत्नमय भी उस माधुप का प्राप्त करने के लिए ससार के समस्त बंधन को तोड़कर योगी बन जाता

१ हिंदी प्रेमगाथा काव्य संग्रह (द्वितीय) पृ० २५६

२ जायसी प्र पावली भूमिका भाग पृ० १५६

है जोर प्रेम पथ को विघ्न बाधा-जा की चिन्ता न करते हुए प्रिय मिलन के हेतु चल पड़ता है । ससार में इस समय मिवाय प्रियतम के कुछ नहीं निगाई देता—

‘तीनि लोक चीन्ह खड सब पर मोहि मूझ ।

पम छाँडि नहि लोन किटु जो देखा मन वृञ्जि ॥’

रत्नसेन रूपी भक्त ने बड़े निश्वास के साथ अपने को प्रेम के समुद्र में डाला था और कहा था—

“प्रेम समुद्र जो अति अवगाहा । जहा न बार पार न पाहा ।

जो एहि लीर समुद्र मझ परे । जीव गवाइ इस होइ तर ॥”

आत्मा युग युग से जन्म जन्मा नर स परमात्मा के विरह में छटपटा रही है । परमात्मा भी अपने अन्त आत्मा के लिए आकुल है । जायसी के पास उसका समाधान यदि कोई है तो वह रत्नसेन के भोग का अलक्ष्य प्रभाव ।

प्रेम चार प्रकार का माना गया है—^१

(१) विवाह के बाद जीवन सघष में जिसका उत्कष दिवाया जाता है ।

(२) विवाह से पूर्व, जो जीवन क्षेत्र में कहीं भेंट होने में उदित होता है और जिसका परिणाम विवाह होता है ।

(३) राजा प्रसाद बाटिका जल बिहार आदि में जो रङ्ग रहस्य के रूप में प्रकट होता है ।

(४) गुण श्रवण चित्र दशन स्वप्न दशन आदि के द्वारा जिसका उत्पन्न होता है ।

सूफियों का प्रेम दूसरे और चौथे प्रकार का समर्पित रूप है ।

प्रेम की उदयावस्था पूवराग है । पूवराग तीन रूपों—चित्रदशन गुण श्रवण और स्वप्न दशन—में उदित होते दिखलाया गया है । स्वप्न दशन द्वारा उत्पन्न पूवराग कम स्वाभाविक है । पूवराग के दो पक्ष हैं—एक मिलन सुख की तमयता, प्रेम की परिपक्वता चिर साहचर्य की स्वीकृति, समर्पण आदि और दूसरा, विरह ।

आत्मिक के मुग्धकारी सोदय रस का एक घूट पीते ही आश्रय मुग्ध बुध का बढता है । भावलीनता और विस्मरण की अवल गहराइया में निमग्न

१ जायसी प्रभावली पृ० ३९

२ वही पृ० ६०

३ वही, पृ० २७

हो जाता है । पद्मावती के रत्नगुण श्रवण करने पर भी रत्नसेन की यही अवस्था होती है—

“सुनतेहि राजा गा मुरसाई । जानी लहरि मुरज ब आई ।

सिनहि उसास बूढि जिउ आई । गिनहि उठ बिसरि बीरआई ।

गिनहि पीत गिरा होइ मुग गता । गिनहि बेन गिन होइ अजेना ॥”

नायक का प्रेम बिह्वल दशा में हो जाना मगधप्रेम का ही रूप उद्दिश्यन करता है । इसमें एक तो ग्रन्थ के प्रकृति व्यापक सौन्दर्य की आरम्भत मिलता है दूसरे साधक के हृदय के चिरन्तन प्रेम गस्कार की ओर ।

पूरवराग के परिपक्व हो जाने के पश्चात् प्रेम का प्रयत्न या साधना पक्ष आता है । साधना पक्ष के दो भाग—बाहरी मधय और विरह है । नायक राज पाठ सुल ऐश्वर्य छोड़कर जोगी बनकर निरल पड़ते हैं—

बला भुगुति माँग कह साधि क्या तप जोग ।

सिद्ध हाइ पद्मावति, जेहि कर हिये वियोग ॥^१

साधक के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ या प्रादुर्भाव होता है । लेकिन साधक उन्हें टुकरा कर अपनी प्रेमसी के प्रति अनन्य प्रेम और निष्ठा का परिचय देता है । इस ही साधना का सधय पक्ष कहते हैं ।

विरह साधना का प्रतीक है । विरह साधना दो प्रकार की होती है—ज्ञान विरह और प्रेम विरह । गुरु के द्वारा साधक को परम प्रिय परमात्मा का बोध कराना और उसने हृदय में विरह का बिगारी जलाना ही ज्ञान विरह जागत करना है ।^२ विरह बिगारी जब सुलग कर कभी न बुझने वाली आग बन जाती है तो साधक विश्व के कण कण का उसी प्रियतम की विरह ज्वाला में सुलगते हुए पाता है । साधनावस्था का भावपक्ष विरह है । विरह की सूफी काव्य का प्राण तत्त्व है—

मुहमद चिनगी पम क, मुनि महि गमन खेराइ ।

घनि विरही औ घनि हिया, बह अस अग्नि समाइ ॥

वियोग साधना ही प्रेम परीक्षा की सफलता की सनत है । यह कितना

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४९

२ वही पृ० ५३

३ वही पृ० ५१

४ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४३ दोहा ६

५ वही पृ० ८८

“अनचिह्नु पिउ कापो मन माहा । का मैं कहव गहय जो वाहा ।”^१

पति पत्नी का मिलन आध्यात्मिक मिलन है । प्रेयसी का अधरामतपान जीवन को अमर कर देता है—

‘अधर घट सो अमिरित पीया । जेहि के विपत अमर भा हीया ॥’^२

प्रिय और प्रयसी गले मिलत ही इत का दुख भूल जाने है । सोने और सोहाने की तरह दोनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं । दाना के बीष का अंतर मिट जाता है—

कहि सतभाव भई कठ लागू । जन कचन औ मिला सोहागू ॥’^३

इस अखण्ड मिलन का ही जिसमें साधक और साध्य (आत्मा परमात्मा) एकाकार हो जाते हैं फना कहा गया है ।^४

जायसी लौकिक सो दय से परम सो दय की ओर अग्रसर होत जात हैं । क्या संयोग क्या वियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास दत्त लगता है । जगत के सारे व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होन लगत हैं ।^५

तात्पर्य यह कि जायसी के प्रेम निरूपण में व सारी विनोदताएँ लक्षित होती हैं जो मधुरभाव के साधक में पाई जाती हैं । अतः केवल यह है कि जायसी सूफी साधक थे और सूफी साधक भौतिक प्रेम की उपेक्षा नहीं कर पाते । उनकी दृष्टि में भौतिक प्रेम केवल प्रतीक ही नहीं सत्य भी है जबकि मधुरभाव का साधक भौतिक रति को जब विषयक रति मानता है । वह भौतिक जीवन के प्रणय प्रसंगा को आध्यात्मिक प्रेम लीला की अभिव्यक्ति का साधन मानता है । किन्तु जहाँ तक मधुर भाव की साधना के अंतिम लक्ष्य का प्रश्न है जायसी की प्रेम साधना में भी उसे ही महत्त्व दिया गया है ।

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १३२

२ चिन्तावली, पृ० २०४

३ जायसी ग्रन्थावली पृ० १३९

४ हिन्दा सूफी कवि वार काव्य सरला गुप्त, पृ० ४९४

५ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५५ (भूमिका भाग)

उपसंहार

पिछले अध्यायो मे जायसी के प्रेम निरूपण का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जायसी भक्तिकालीन प्रेमाम्बानक काव्य परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनके काव्य—पद्यावत, चित्ररेखा—का बीज भाव प्रेम है। उनकी अथ वृत्तियां भी 'प्रेम' का महत्व प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः सूफी साधना के मूल में 'प्रेम' ही सर्वप्रधान तत्व है। आरम्भ से लेकर सूफी साधना के चरम विकास तक जितने सूफी साधक हुए हैं प्रायः सभी ने प्रेम की श्रद्धा, त्यागकता और अलौकिकता का प्रतिपादन किया है।

जायसी ने 'प्रेम' को केन्द्र में रखकर कथा प्रतीक के माध्यम से सूफी साधना के गूढ़ रहस्य को प्रकट किया है। मनुष्य के जीवन की साधकता प्रगट करने वाला न जप है, न तप, न नान, न ध्यान, न बराग्य न पूजा वह प्रेम के बल पर ही दीयता प्राप्त करता है। जप तप योग, नान तो प्रेम निष्ठा के लिए मनोभूमि प्रस्तुत करते हैं। प्रेम ही मनुष्य को ईश्वर के निकट ले जाता है। प्रेम ही ईश्वर है।

सम्पूर्ण सृष्टि प्रेममयी है। इसकी रचना प्रेम के लिए—प्रेम को स्थापित करने के लिए की गयी है। यह स्वयं सृष्टा के प्रेम में मग्न अनवरत उसी की खोज में गतिमयी है। सृष्टि का कण कण अनात प्रिय का खोज रहा है। गति के मूल में प्रेम का आकषण है। प्रेम विश्व यापी है। प्रेम ही चेतना का सस्वार करता है। प्रेम ही सत्य है।

सच्ची अद्वैतता प्रेममूलक होती है। 'जानात्मक' एकात्मभाव से अधिक स्थायी भावात्मक एकात्मभाव है। सूफी साधना इसीलिए प्रेम भाव के द्वारा पूर्ण अद्वैतता की स्थिति तक पहुँचती है। जायसी की प्रेम साधना का यही लक्ष्य है—प्रिय के साथ पूर्ण एकात्म।

मयुर साधना का केन्द्र प्रेम है। प्रेम से बड़ी बाई साधना नहीं है। प्रेम ईश्वर और मनुष्य को एक सूत्र में पिरोने वाला तत्व है। प्रेम ध्रुव के

१८० । सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

समान ऊँचा, ध्येष्ठ और प्रकाशमान है । प्रेम की ज्वाला में जल कर जो निष्कलुष हो गया है वे ही सच्चे साधक हैं । उन्हीं का जीवन साधक है । प्रेम निरूपण करके जायसी यशस्वी हुए हैं । प्रेम ने ही जायसी का अमर बनाया है । प्रेम करना है तो विरह के मम को समझना होगा । सच्चा प्रेम विरह की तीव्र अनुभूति से ज्योतिष होकर सारे ससार को प्रकाशित करता है । जायसी का प्रेम ऐसा ही दिव्य, अमर, अलौकिक विरह गर्भित प्रेम है ।

सहायक ग्रन्थ सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

१ अभिज्ञान शाकुन्तलम्	स० कपिलदेव द्विवेदी	प्रथमावृत्ति
२ ऋग्वेद	पना	१९३३ ई०
३ तत्तिरीयोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर	२०२६ ई०
४ भक्तिरसामृतसिन्धु	ऋग्वेदस्वामी स० डा० नरेन्द्र	१९६३ ई०
५ महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर	२०२५ वि०
६ विष्णुसंहिता	एच० जी० वेल्कर	१९४८ ई०
७ बहुदारण्यकोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर	२०२५ वि०
८ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणम्	पण्डित पुस्तकालय काशी	१९५१ ई०
९ श्रीमद्भगवद्गीता	टीकाकार-बाबूराव विष्णु पराडकर	१९७१ वि०
१० श्रीमद्भागवत	मोतीलाल बनारसीदास पटना	१९६४ ई०
११ हरिवंशपुराण	पण्डित पुस्तकालय, काशी	प्रथमावृत्ति

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

१२ अनुराग वासुदेवी (नूरमुहम्मद)	स० रामचन्द्र शुक्ल चन्द्रबली पाण्डेय	२००२ वि०
१३ अष्टछाप और बल्हमसम्प्रदाय दीनदयाल गुप्त		२००४ वि०
१४ इन्द्रावती (नूरमुहम्मद)	स० श्यामसुन्दरदास	१९०६ ई०
१५ इस्लाम के सूफी साधक	अनु० नमदेश्वर चतुर्वेदी	प्रथम संस्करण
१६ ईरान के सूफी बक्वि	बकि बिहारी तथा न. हैयालाल	
१७ बन्धीर प्रयावली	श्यामसुन्दरदास	२००८ वि०
१८ गीतावली (मुलसी प्रयावली)	स० रामचन्द्र शुक्ल	२०२५ वि०

१८० । सूफी बवि जायसी का प्रेम निरूपण

समान ऊँचा, थोष्ट और प्रकाशमान है । प्रेम की ज्वाला भे जल कर जो निष्कलुष हो गय है वे ही सच्च साधक हैं । उही का जीवन साधक है । प्रेम निरूपण करके जायसी यक्षस्वी हुए हैं । प्रेम ने ही जायसी का अमर बनाया है । प्रेम करना है तो विरह के मम को समझना होगा । सच्चा प्रेम विरह की तीव्र अनुभूति से ज्योतिष होकर सारे ससार को प्रकाशित करता है । जायसी का प्रेम ऐसा हा दिय, अमर, अलौकिक विरह शक्ति प्रम है ।

सहायक ग्रन्थ सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

१ अभिज्ञान शाकुन्तलम्	स० कपिलदेव द्विवेदी	प्रथमावृत्ति
२ ऋग्वेद	पूना	१९३३ ई०
३ तत्तिरीयोपनिषद्	गीतप्रेस, गोरखपुर	२०२६ ई०
४ भक्तिरसामृतसिंधु	श्रीगोस्वामी, स० डॉ० नगेन्द्र	१९६३ ई०
५ महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर	२०२५ वि०
६ विजयमोक्षगीयम्	एच० जी० बेलकर	१९४८ ई०
७ बह्मरूप्यकोपनिषद्	गीताप्रेस गोरखपुर	२०२५ वि०
८ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणम्	पंडित पुष्पकालय शर्मा	१९५१ ई०
९ श्रीमद्भगवद्गीता	टीकाकार-बाबूराव विष्णु पराबकर	१९७१ वि०
१० श्रीमद्भागवत	मोतीलाल बनारसीदास, पटना	१९६४ ई०
११ हरिवंशपुराण	पण्डित पुस्तकालय शर्मा	प्रथमावृत्ति

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

१२ अनुराग बागुरी (नूरमुहम्मद)	स० रामचन्द्र गुप्त, चन्द्रबहा पाण्डेय	२००२ वि०
१३ अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय दीनदयाल मुष्ट		२००४ वि०
१४ इन्द्रावली (नूरमुहम्मद)	स० श्यामसुन्दरदास	१९०६ ई०
१५ इस्लाम के सूफी गाथक	अनु० नमदेश्वर चतुर्वेदी	प्रथम उत्स्वरण
१६ ईरान के सूफी कवि	बाबे बिहारी तथा न हैपालाल	
१७ बघोर प्रयावली	दयामुन्दरदास	२००८ वि०
१८ गीतावली (मुलसी प्रयावली)	स० रामचन्द्र गुप्त	२०२५ वि०

१८२ । सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

१९	गोस्वामी तुलसीदास	रामचन्द्र गुक्ल	१९४१ ई०
२०	चित्रावली (उत्तमान)	म० जगमोहन गर्मा	१९१२ ई०
२१	चित्ररेखा (जायसी)	म० शिवसहाय पाठक	१९५९ ई०
२२	जायसी	रामपूजन तिवारी	१९६७ ई०
२३	जायसी ग्रन्थावली	स० रामचन्द्र गुक्ल	२०१३ वि०
२४	जायसी का पद्यान्त गास्थीय भाष्य	गानिन्द त्रिगुणायत	प्रथम संस्करण
२५	जायसी वं परवर्ती सूफी कवि जीर काव्य	सरला गुक्ल	प्रथम संस्करण
२६	तत्त्वबुद्धि अथवा सूफीमत	चन्द्रबली पाण्डेय	१९४८ ई०
२७	दाहावली	स० लाला भगवानदीन	१९८३ वि०
२८	न ददास ग्रन्थावली	म० ब्रजरत्ननाथ	२०१४ वि०
२९	नल दमन (सूरदास लयनवी)	स० वामुदेव शरण अग्रवाल	१९६१ ई०
३०	पद्मावत	स० वामुदेव शरण अग्रवाल	२०१२ वि०
३१	पद्मावत का काव्य सौन्दर्य	शिवसहाय पाठक	१९५६ ई०
३२	प्रामाणिक हिन्दी कोश	रामचन्द्र वर्मा	२००८ वि०
३३	भ्रमर गीत सार	स० रामचन्द्र गुक्ल	२०१६ वि०
३४	भक्ति का यम मधुर भाव का स्वरूप	जयनाथ नलिन	१९६६ ई०
३५	मध्यकालीन धर्म साधना	हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९६२ ई०
३६	मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी	१९६२ ई०
३७	मध्ययुगीन काव्य साधना	रामचन्द्र तिवारी	प्रथम संस्करण
३८	मध्ययुगीन प्रेमसाधना	श्याम मनोहर पाण्डेय	,
३९	मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य	शिवसहाय पाठक	१९६४ ई०
४०	मधुमालती (मञ्जन)	स० माता प्रसाद गुप्त	१९६१ ई०
४१	मध्यकालीन हिन्दी और पञ्जाबी प्रेमसाधना	ज्योतिप्रकाश	१९७१ ई०
४२	माधवानन्द कामकदला प्रबंध	म० एम० जार० मामूदार	१९६२ ई०
४३	रस रत्न (पुहकर)	शिवप्रसाद सिंह	२०२० वि०
४४	रामचरित मानस	गीताप्रस, गोरखपुर	

४५	रामचरित मानस	काशिराज संस्करण	१९६२
४६	राधावल्लभ सम्प्रदाय	विजयेन्द्र स्नातक	२०१४ वि०
४७	रामभक्ति मन्त्रिक सम्प्रदाय	भगवती प्रसाद सिंह	२०१४ वि०
४८	रामभक्ति मन्त्र मधुर उपासना	भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र	२०१४ वि०
४९	विद्यापति पदावली	मिश्र भजुमदार	१९५१ वि०
५०	स तबानी संग्रह (पहला भाग)	बेलवडियर प्रेस, इलाहाबाद	१९५० ई०
५१	सूरसागर (प्रथम भाग)	नागरी प्रचारिण सभा	२००५ वि०
५२	सूरसागर (द्वितीय भाग)	" " "	२००७ वि०
५३	सूर और उनकी साहित्य	हरवल्लाल शर्मा	२०१५ वि०
५४	सूर साहित्य	हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९५६ ई०
५५	सूर सौरभ	मुशीराम शर्मा	२०१३ वि०
५६	सूफीमत साधना और साहित्य	राजपूजन तिवारी	२०१३ वि०
५७	सूफीमत और हिंदी साहित्य	विमल कुमार जन	१९५५ ई०
५८	सूफीकाव्य-संग्रह	परशुराम चतुर्वेदी	२०१३ वि०
५९	हम जवाहर (कासिमगाह)	सज्जुमार प्रेस लखनऊ	१९५२ ई०
६०	हिंदी साहित्य का आलाचनात्मक इतिहास	रामकुमार वर्मा	१९५४ ई०
६१	हिंदी साहित्य में विरह प्रसंग	हनुमानदास चकोर	प्रथम संस्करण
६२	हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह	गणेशप्रसाद द्विवेदी	१९५३ ई०
६३	हिंदी प्रमाख्यानक काव्य	कमल कुलश्रेष्ठ	१९६२ ई०
६४	हिन्दी कृष्णकाव्य में भाष्योपासना	कमल कुलश्रेष्ठ	१९५३ ई०
६५	हिन्दी सूफी कवि और काव्य सरला मुखर्जी		२०१३ वि०

(ग) उर्दू, अरबी ग्रन्थ

१८४। सूफ़ी कवि जायसी का प्रम निरूपण

- ६९ दीवान ग़वाजा ग़रीब नवाज़ स० मुस्लिम अहमद निज़ामी जामा मस्जिद
दिल्ली
- ७० दीवाने गौसुल आजम कुतुबख़ाना नजीरिन उदूग़ाज़ार दिल्ली
- ७१ यूसुफ़ ज़ुलेखा स० गोपालचन्द सिन्हा प्रथम संस्करण
- ७२ लला मजनू (निज़ामी) नवल बिगोर प्रेस १८८० ई०
- ७३ हक़ाय़े हिन्दी (मीर अनुल अनु० सैयद अतहर
वाहिद बिलग्राम) अनास रिजवी १९५७ ई०

